

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन

वर्ष २००३



परमपूज्य अनन्तश्रीविभूषित आचार्य महामण्डलेश्वर श्रोत्रिय
ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी महेशानन्द गिरिजी महाराज

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
१.	गुरुपूर्णिमा	१-६
२.	श्री अर्जुनविश्वनाथ वार्षिक उत्सव	१०-१६
३.	श्रीकृष्णजन्माष्टमी	२०-२६
४.	महाशिवरात्रि	३०-४६
५.	श्रीगणेश चतुर्थी	४७-५६

गुरुपूर्णिमा

मनुष्य की मनुष्यता इसी में है कि वह अपना ज्ञान अगली पीढ़ी को दे सकता है। किसी भी पशु-पक्षी के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह अपना ज्ञान अगली पीढ़ी को दे सके। अतः चाहे जितना बढ़िया घोंसला चिड़िया बना लेती है, बया का घोंसला बड़ा सुन्दर होता है, परन्तु जैसा वह दो हजार साल पहले बनाती थी वैसा ही अब भी बनाती है। उसके अन्दर आगे किसी प्रकार का परिवर्तन धीरे-धीरे किया जा सके ऐसा नहीं। मनुष्य दो हजार साल पहले जैसा मकान बनाता था उससे आज का मकान बनाने का तरीका कितना बदल गया, यह सब जानते ही हैं। यह इसी से सम्भव हो पाता है कि एक पीढ़ी अपना ज्ञान दूसरी पीढ़ी को देती है ताकि उतने ज्ञान के लिए फिर से प्रयत्न नहीं करना पड़ता है, उसे मान कर ही नयी पीढ़ी आगे बढ़ती है। ज्ञान की बढ़ोतरी इसी आधार पर होती है कि अब तक जितना ज्ञान किसी विषय में प्राप्त हुआ उस विषय का जानकार पहले उस ज्ञान को प्राप्त करे। पुराने जमाने की बातें उपेक्षा के लायक नहीं हैं क्योंकि उन बातों से ही हम यहाँ पहुँचे हैं। कभी विचार करके देखो, घास की तरह पैदा हो रहे गेहूँ के बीज को किस मौसम में बोया जाय, किस मौसम में उसको काटा जाय, उसके बाद कैसे उसे चक्की से पीसा जाय, आटा बनाकर फिर उसमें पानी डालकर गूँथा जाय, लोई बनाई जाय, चकला बेलन पर उसे पतला किया जाय, फिर उसे तवे पर सेंका जाय तब उसे खाया जाय। न जाने कितनी पीढ़ियाँ बीत गई होंगी इस ज्ञान को प्राप्त करने में। इस प्रकार जितना भी ज्ञान है वह सब इसी तरह से बढ़ता है। प्राचीन काल से हम लोगों की यह परम्परा रही है कि पुरातन ज्ञान और उसे खोजने वालों को महत्त्व दिया जाये, इसीलिए हम लोग अनादि काल से जितने भी आचार्य हुए हैं उन्हें आदर एवं श्रद्धा से देखते हैं। हम कुछ ज्यादा जान गये इसका मतलब यह नहीं है कि वे हमसे कम थे।

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

आईस्टाइन से एक बार किसी ने कहा कि 'आपने न्यूटन के सभी सिद्धान्तों का खंडन किया है इसलिए आप उनसे बहुत बड़े हैं।' आईस्टाइन ने कहा कि 'बेवकूफों वाली बात मत करो। किसी स्थान पर खेल हो रहा है। चारों तरफ से घेर कर लोग खेल देख रहे हैं। वहाँ एक बच्चा भी है, उसे दिखाई नहीं दे रहा है क्योंकि लोग सामने खड़े हैं। वह अपने पिता से कहता है 'मुझे कुछ नहीं दिखाई देता।' पिता उसे उठाकर कन्धे पर बैठा लेता है। अब वह अपने पिता से ऊँचा हो गया और उसे अधिक साफ दीखने लग गया। क्या वह अपने पिता से बड़ा हो गया? इसी प्रकार न्यूटन के कन्धों पर बैठ कर मैंने कुछ और ज़्यादा देख लिया तो क्या मेरा ज्ञान उससे ज़्यादा श्रेष्ठ है?' इसी दृष्टि से पारम्परिक विद्याओं का महत्त्व समझकर उनके प्रति आदर रखना शिष्ट लोगों का कर्तव्य है।

भगवान् व्यास ने- जिन्हें हम लोग भगवान् नारायण का ही अवतार मानते हैं- इस वेदविद्या का ऐसा उपस्थापन किया कि सभी तरह के अधिकारी उसे समझ सकें। प्रवृत्तिमार्ग की परंपरा अपने शिष्य जैमिनि द्वारा पुष्ट कराई तथा स्वयं व्यासजी ने निवृत्तिमार्ग की परंपरा सुरक्षित रखने के लिए निवृत्तिमार्ग के मूल ग्रंथ उपनिषदों के तात्पर्य को सुनिश्चित किया, ब्रह्मसूत्रों द्वारा वेदान्त-सिद्धान्त की मर्यादाएँ स्थापित कीं। जितना वेदों का रहस्य है उसे प्रकट करने के लिए उन्होंने ब्रह्मसूत्र की रचना की। ब्रह्मसूत्र के अन्दर जो कुछ भी वेद के चरम सिद्धान्त हैं उन सबका विचार किया गया है। आज व्यास-पूर्णिमा है अतः व्यासजी के बनाये सूत्र पर आचार्य शंकर के भाष्यानुसार विचार करते हैं।

परायत्ताधिकरण (२.३.१६.४१-४२) में विचार इस बात पर चला कि वेद में दो तरह की बातें कही गई हैं - कहीं वेद कहता है कि परमात्मा ही सब कुछ करता-कराता है और कहीं पर कहता है कि जीव जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है। दोनों बातें विरुद्ध लगती हैं। इसलिए कुछ लोगों ने तो यह मान लिया कि मनुष्य भी एक यंत्र की तरह है, वह स्वयं कुछ नहीं करता। अतः पाप पुण्य का

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

सारा दोष परमेश्वर का है जीव बेचारा क्या करे? जैसा करवाता है वह वैसा कर देता है। ऐसे लोग कहते हैं 'अरे! मनुष्य तो कुछ नहीं कर सकता है, बस जैसा परमात्मा कराता है वैसा करता है। किसी जीव का कोई दोष नहीं है, जैसी नियति होती है वैसा होता है।' विशेषकर आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान वाले ठीक हमारे सांख्यवादियों की तरह ही कहते हैं कि प्रकृति ही सब कुछ करती है। वे शंका करते हैं कि यदि ईश्वर ही सब कुछ कराता है तो लोगों के प्रति विषम और करुणाहीन हो जायेगा क्योंकि वह किसी से अच्छा काम करवाता है और किसी से बुरा करवाता है। जब संसार को देखते हैं तो अधिकतर लोग दुःखी दीखते हैं अतः ईश्वर करुणाहीन भी है क्योंकि अधिकतर लोगों से पाप करवाकर तदनु रूप फल देता है। परमेश्वर पर यह दोष आ जाता है। जीव से कर्म कराया ईश्वर ने और फल भोगना पड़ता है जीव को, यह अन्याय है। वह करुणाहीन भी है क्योंकि अधिकतर लोगों को उसने दुःखी बनाया। इन शंकाओं का समाधान व्यासजी ने दिया -

‘कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः’

भगवान् वेदव्यास कहते हैं कि ईश्वर ज़ोर-ज़बर्दस्ती से नहीं करवाता। जीव जो करने का प्रयत्न करता है उसकी सामर्थ्य ईश्वर देता है यही उसका 'कराना' है और जीव जब कर्म कर लेता है तब तदनुसार ईश्वर फल देता है। इसलिए उसमें न वैषम्य न नैर्घृण्य दोष है। जो जिस कार्य को करने को तैयार हुआ उसे तदनुकूल परिस्थिति दे देता है, बस परमेश्वर इतना ही करता है। यदि ऐसा नहीं मानते तो क्यों शास्त्रों में विधान किया कि 'आदमी को ऐसा करना चाहिए।' यदि करने में स्वतंत्रता न होवे तो 'ऐसा करो' कहने का कोई मतलब ही नहीं रह जाता। फिर काहे के लिए सारे ग्रंथ बतलाते हैं कि ऐसा करे और ऐसा न करे? ब्राह्मण यह करे और यह न करे, पुरुष यह करे और यह न करे, स्त्री यह करे और यह न करे। सारा करने का विधान और प्रतिषेध का विधान शास्त्र में बताया है। यदि करने और न करने में जीव स्वतंत्र ही नहीं है तब शास्त्र अधिकतर

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

जो धर्म का प्रतिपादन करता है वह सब व्यर्थ हो जायेगा। नियम तभी किसी को बताया जा सकता है जब वह उसे कर सके। जो जिस कार्य को नहीं कर सकता है वह उसे करे - ऐसा कहने का कोई मतलब ही नहीं। सारे धर्मशास्त्र की व्यर्थता की प्राप्ति हो जायेगी यदि जीव पूर्णतः परतंत्र माना जाये। इसलिए भगवान् बादरायण ने निर्णय दिया कि जीव यन्त्र की तरह सर्वथा पराधीन नहीं है। प्रयत्न जीव करता है, सामर्थ्य ईश्वर से पाता है और उस सामर्थ्य के प्रयोग से अच्छा-बुरा जो कर्म करता है उसका फल ईश्वर देता है। चेष्टा जीव ने की, उसके अनुसार धर्म और अधर्म उसके अपने किये हुए हैं उनकी अपेक्षा से, जिसने धर्म किया उससे अच्छी प्रवृत्ति कराता है, जिसने अधर्म किया उससे बुरी प्रवृत्ति कराता है। इसलिए उक्त दोष प्राप्त नहीं होते हैं।

जीव का अपना किया हुआ धर्माधर्म का प्रयत्न अलग-अलग है। जीव ने जैसा धर्माधर्म किया उसके लिए जो चेष्टा की, उसके कारण विषमता है जो जीव के अपने कर्मों के कारण ही है। उसके अनुसार फल देने के कारण ईश्वर अलग-अलग फल देता हुआ दीखता है किसी को अच्छा किसी को बुरा, जिसने धर्म किया उसको अच्छा, जिसने अधर्म किया उसको बुरा लेकिन इस भेद का कारण ईश्वर नहीं कि उस पर वैषम्य का दोष मढ़ा जाये। यहाँ भाष्यकार दृष्टान्त देते हैं 'पर्जन्यवत्' यानी बादल की तरह ईश्वर निमित्तमात्र है। जिस प्रकार पानी बरसता है, कोई छोटा पौधा पैदा होता है कोई बड़ा पेड़ पैदा होता है। कोई गेहूँ हो गया, कोई धान हो गया। बादल ने गेहूँ पर कोई दूसरा पानी बरसाया हो, धान पर कोई दूसरा बरसाया हो, ऐसा नहीं है। वह तो एक-जैसा बरसेगा, लेकिन विषमता का कारण है बीज। उसी बगीचे के अन्दर तुमने बावरिया बो दिया, मूँग बो दिया। बावरिया में काँटा निकल रहा है। क्या काँटे के अन्दर बादल ने कोई खास पानी बरसाया था? वह तो एक-जैसा बरस रहा है परन्तु असाधारण कारण है बीज, नीम का बीज है तो कड़ुवा फल निकलेगा, आम का बीज है तो मीठा फल निकलेगा

परन्तु अगर बादल न बरसे तो फिर कुछ भी पैदा नहीं होगा, न नीम पैदा होगा, न आम पैदा होगा, न जौ पैदा होगा, न धान पैदा होगा। इसलिए यह भी नहीं कह सकते हो कि बीज ने पेड़ बना दिया क्योंकि यदि बीज पेड़ बनाता तो बिना बादल के भी बना देता! इसलिए बादल की कारणता तो निश्चित है, पर क्या-क्या फल होगा यह बीजों के अधीन है। यदि बरसात न हो तो वृक्ष, पुष्प, पौधे आदि की विषमता भी नहीं होगी, सारे ढूँठ के ढूँठ खड़े रहेंगे! इसी प्रकार जीव के द्वारा जो किया गया धर्माधर्म का प्रयत्न है उससे ही ईश्वर शुभ और अशुभ फलों को देता है। अतः ईश्वर कराता है, फल देता है और जीव करता है इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। ईश्वर-इच्छा के बिना पत्ता नहीं हिल सकता - यह बात बिल्कुल ठीक है, जिस प्रकार बरसात के बिना कोई पौधा नहीं उग सकता। अपने किये अनुसार होता है- यह भी ठीक है जैसे बीज के अनुसार पौधा पैदा होता है। विभिन्नता बीज के ऊपर निर्भर करती है उसी प्रकार जीव के कर्म के ऊपर जीव की भिन्नता निर्भर करती है।

भाष्यकार प्रश्न उठाते हैं कि यदि उसी का किया हुआ प्रयत्न है तो फिर जीव को पराधीन कहना बनता ही नहीं है। इसका जवाब स्वयं देते हैं कि यह दोष नहीं है: 'परायत्तेऽपि हि कर्तृत्वे करोत्येव जीवः, कुर्वन्तं हि तमीश्वरः कारयति।' ऐसे समझ लो, अगर हमारी आँख नहीं हो तो हम न मन्दिर में जाकर भगवान् का दर्शन कर सकते हैं और न टेलीविजन देख सकते हैं। कोई कहे कि आँख है इसलिए हम गन्दी चीजें देखते हैं। न भगवान् ने हमें आँख दी होती न हम गन्दी चीजों को देखते। हमारे टेलीविजन के कारण जो बुरे संस्कार पड़ते हैं इन सबका कारण भगवान् है! तो यह बात मानने लायक नहीं होगी। परमेश्वर के आँख दिये बिना तुम कुछ नहीं देख सकते लेकिन आँख तुम्हारी है उसे तुम किधर लगाते हो, किसके लिए लगाते हो यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है। यद्यपि तुम्हारे हाथ, पैर, जबान आदि हैं तो सब परमेश्वर के अधीन तथापि उनके उपयोग में कर्तृता तुम्हारी है। जब तुम्हारे करण काम कर रहे हैं तभी तुम कुछ

पुण्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

भी कर सकते हो पर इतना ही परमेश्वर के अधीन हो, करने वाला तो जीव ही है, करने वाला परमेश्वर नहीं है। 'कुर्वन्तं हि तमीश्वरः कारयति' जीव जब अपने संस्कारों के द्वारा करता है तब ईश्वर उसे सारी सहायता देकर करवा देता है। प्रयत्न तुमने किया, आगे परमेश्वर उसके लिए सारा इन्तजाम कर देते हैं। हमने अच्छा प्रयत्न किया या बुरा प्रयत्न किया यह निर्भर करता है कि हमने पूर्व में कैसे प्रयत्नों के संस्कार एकत्र किये हैं। पहले किये प्रयत्न के संस्कार ही आगे प्रयत्न कराते हैं और संसार प्रवाह अनादि है अतः हर प्रयत्न से पूर्व भी प्रयत्न था ही, उसके संस्कारानुसार अगला प्रयत्न हो जाता है। ऐसा नहीं है कि जीव किसी दिन पैदा हुआ और उसके बाद उसने कर्म करना शुरू किया। यदि ऐसा होता तब प्रश्न आता कि पहली बार जीव से परमेश्वर ने कैसे कर्म करवाया। किन्तु संसार अनादि है, जीव भी अनादि है इसलिए हमेशा से ही कर्म करता रहा है। जैसा यह करता रहा है वैसा ही परमेश्वर इसको हमेशा से फल देते आ रहे हैं।

‘कथं पुनरवगम्यते कश्चप्रयत्नापेक्ष ईश्वर इति?’ भाष्य में प्रश्न उठाया कि ईश्वर तो हमेशा स्वतंत्र है इसलिए यह निश्चय कैसे किया जाय कि परमेश्वर जो हमने किया है और जिसके लिए हमारी प्रवृत्ति है उसकी अपेक्षा से ही फल देगा? ईश्वर तो स्वतंत्र होता है, चाहे जैसा करवा ले। व्यास जी इसका जबाब देते हैं कि ईश्वर ने शास्त्र में जो करने को कहा और जो करने को मना किया अर्थात् विधि-निषेध वह सार्थक ही यह मानकर है कि जीव स्वयं करेगा और ईश्वर तदनुसार फल देगा अन्यथा विधि से प्रेरित होकर किया हुआ सारा कर्म व्यर्थ हो जायेगा। जीव को स्वर्ग की कामना होती है, वह उसे पाने का प्रयत्न करता है तो उससे ईश्वर सत्कर्म करा लेता है और स्वर्ग दे देता है। ऐसे ही नरक-फलक कर्म करने की इच्छा से जीव पाप में प्रवृत्त होता है तो ईश्वर उससे पाप करा लेता है और नरक भेज देता है। प्रयत्न और उसमें प्रेरक कामना जीव करता है। जीव पुण्य करे या पाप यह उसके मुकद्दर में नहीं लिखा रहता!

पुण्य-पाप वह अपनी इच्छा से करता है तो फल मुकद्दर में लिख दिया जाता है। जीव जड़ पदार्थों की तरह नहीं है। इस प्रकार स्वीकारने पर ही विहित और प्रतिषिद्ध व्यर्थ नहीं होते अन्यथा वे सारे शास्त्र निरर्थक हो जायेंगे। इसी प्रकार यदि फल देने में ईश्वर जीव के कर्मों का अनुसरण न करे तो पुण्यकर्ता को नरक और पापी को स्वर्ग देने लग जायेगा! और जब यह नियम नहीं रहेगा कि पुण्य से स्वर्ग ही मिलता है तब जीव पुण्य में क्यों प्रवृत्त होगा? अतः जीव शास्त्रोक्त कर्म करे यह भी तभी सम्भव है जब ईश्वर कर्मानुसार फल देता है यह माना जाये। इस प्रकार वेद के विधि-निषेधों की प्रामाणिकता सुरक्षित रखने के लिए यही स्वीकारना अनिवार्य है। विधान ईश्वर के लिए तो हैं नहीं कि वह क्या कराये, बल्कि जीव के लिए हैं कि वह क्या करे। अतः जीव करने में सक्षम स्वीकारना ही उचित है। कोई नास्तिक कह दे कि वेद अप्रमाण हों तो क्या हानि है! तब भाष्यकार कहते हैं कि ईश्वर के सर्वथा अधीन मानने पर लौकिक प्रयोजनों के लिए प्रयास भी संभव नहीं रहेंगे। जब चावल उबालने को रखते हो तब चावल ढाने को मिलता है। स्वयं को सर्वथा अधीन मानो तो बैठे रहो कि जब भगवान् को भात खिलाना होगा तब वे चावल पका लेंगे, हम काहे को बनायें! अतः लौकिक पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जायेगा। पत्नी को कहना भी बेकार है कि 'सायं के छह बज गये हैं, भोजन बनाना शुरू करो'। इसलिए यह अनुभवसिद्ध मानना पड़ता है कि हम कुछ करने में एक हद तक स्वतंत्र हैं, चाहकर कोशिश कर सकते हैं। इसी प्रकार से कई चीजों में देश कारण होता है। किसी देश में कोई काम हो सकता है किसी में नहीं हो सकता है। वीकानेर के बालू के टीलों में चावल पैदा करना चाहो तो कैसे हो सकता है? इसी प्रकार से बांगला देश के पानी में तुम चाहो बाजरा पैदा कर लेंगे तो कहाँ से कर लोगे। कोई कहे कि परमेश्वर स्वतंत्र है, बिना पानी के चावल उगा दे! पर ऐसा कहीं देखने में आता है क्या? इसी तरह से दिन में सूर्य उगेगा, रात्री में नहीं। एस्प्री की गोली खाते हो तो सिर-दर्द जाता है, नहीं खाते हो

तो नहीं जाता है। इसलिए देश, काल और लौकिक निमित्त भी अपेक्षित हैं, उनके अनुसार ही ईश्वर कार्य करता है, ऐसे ही जीव के कर्मों के अनुसार वह फल देता है। यदि ऐसा मानोगे कि सर्वथा निरपेक्ष रहकर ईश्वर कार्य कर लेता है तो लौकिक व्यवहार भी असम्भव हो जायेगा।

इस प्रकार भगवान् वेदव्यास ने बतला दिया कि तुम अपने खुद पहले किये के अनुसार प्रवृत्ति करते हो, भगवान् तुम्हें सामर्थ्य देता है। जब तुम कर्म कर लेते हो तब तुम्हारे किये हुए कर्मों के अनुसार कर्मफल देता है। परमेश्वर के दिये साधनों के बिना तो जीव कुछ कर नहीं सकता यह बात बिल्कुल ठीक है लेकिन साधनों का तुम कहाँ पर प्रयोग करते हो इसकी तरफ हमेशा ध्यान रखना चाहिए अन्यथा सारी गड़बड़ी हो जायेगी। एक कहानी आती है। कहीं दीवार गिर गई, एक आदमी मर गया। राजा के पास शिकायत गई, राजा ने फैसला दे दिया कि दीवार बनवाने वाले की गलती है इसलिए उसे फाँसी दी जाय। दीवार बनाने वाले ने सोचा कि मैं तो मारा गया। उसने कहा कि 'मेरी गलती नहीं है। मेरा जो मजदूर था उसने पानी ज्यादा गिरा दिया था, दीवार कच्ची रह गई इसलिए गलती उसकी है।' राजा भी ऐसा ही था, उसने कहा कि 'यदि मजदूर की है तो उसे फाँसी दी जाय।' जब उसे पकड़कर लाया गया तो उसने बताया कि 'मैं जब पानी डाल रहा था तब वहाँ से एक व्यक्ति निकला, मेरा ध्यान उस व्यक्ति की तरफ चला गया और पानी गिर गया।' राजा ने कहा कि 'यह बात भी ठीक है'। उस वर को पकड़ लिया। वह बेचारा दुबला-पतला था, उसको फाँसी चढ़ाई गई तो फाँसी लगी नहीं क्योंकि वह बहुत दुबला था और वह फाँसी उसके गले को पकड़ नहीं सकी। राजा के पास बात गई कि 'इसका गला तो बहुत पतला है, इसलिए फाँसी किसको चढ़ाई जाय?' राजा ने हुक्म दिया कि 'फाँसी के साईज का जो आदमी मिले उसे फाँसी चढ़ा दी जाय।' यह तो पुरानी कहानी है। वर्तमान काल में हरएक बात में किसकी गलती है यह निर्धारित करने के लिए कमीशन बैठा दिया जाता है। अन्त में

किसी की गलती नहीं निकलती है क्योंकि सब एक दूसरे की गलती बताते हैं। इसलिए एक बार हम यदि यह मान लेते हैं कि अपने प्रयत्न से आदमी नहीं करता तो हमेशा किसी-न-किसी दूसरे आदमी या चीज पर दोष डालने की प्रवृत्ति रुक नहीं सकती। लोग कहते हैं कि हमारे यहाँ झीलें इतनी गन्दी हो गई हैं परन्तु सरकार कुछ नहीं कर रही है। सवाल है कि सरकार कुछ नहीं कर रही है पर जो कहने वाले हैं वे लोग झीलों में इतना कचरा डालकर गन्दा करते क्यों हैं? हमेशा प्रश्न यह करना चाहिए कि कारणता मेरे में कहाँ है; मैं अपना प्रयत्न करके जिस चीज को ठीक कर सकता हूँ उसको ठीक करूँ, दूसरा क्या करेगा इसका विचार करने से काम नहीं होगा। ठीक इसी प्रकार अपने कल्याण के लिए खुद प्रयत्न करना चाहिए। कई बार कोई व्यक्ति महिनों से आता नहीं। हम पूछते हैं कि 'बहुत दिनों से आये क्यों नहीं?' कहता है 'महाराज! आपने डोर ही नहीं खींची।' थोड़ी देर बाद कहता है कि 'मैं जा रहा हूँ।' हम कहते हैं 'हम थोड़ी डोर पकड़े बैठे हैं।' दो-चार मिनट बैठने के बाद फिर कहता है कि 'महाराज अब जायें?' हम कहते हैं कि 'हम डोरी पकड़े बैठे हैं इसलिए आप नहीं जा सकते।' बोलता है 'महाराज! अब जाना तो पड़ेगा ही।' तब हम कहते हैं कि यह तुम्हारी भूल है जो तुम कहते हो कि डोरी आपने खींची नहीं, क्योंकि डोर तो तुम अपने हाथ में लिये बैठे हो! इसी प्रकार परमेश्वर के मार्ग में हर एक आदमी दुनिया-भर के कारण बता देता है कि इस-इस कारण भजन नहीं कर पाया। यदि वह एक बार समझ ले कि करना मेरे हाथ में है तो वह निश्चित रूप से अपने मार्ग को तय करने में सफल हो जायेगा।



श्रीअर्बुदविश्वनाथ वार्षिक उत्सव, सन् २००३

‘प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम्’

यह सारा संसार क्या है? पंच-महाभूतों का विस्तार है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश- इन पंचभूतों के सूक्ष्म हिस्सों से जिससे भोग किया जाय वह सूक्ष्म शरीर बना है और इनके स्थूल हिस्सों से जिसका भोग किया जाय, वे विषय और जिसमें बैठकर भोग किया जाय वह स्थूल शरीर बना है। परमेश्वर की ज्ञान शक्ति को प्रकट करने के लिए मन बना, परमेश्वर की क्रिया शक्ति को प्रकट करने के लिए प्राण बना। ज्ञान और क्रिया को मिलाने वाली है इच्छा शक्ति। हम किसी चीज को जानते हैं तो या उसे प्राप्त करने की इच्छा होती है या हटाने की इच्छा होती है। अपना छोटा पुत्र अपने छोटे हाथों को हमारे पैर पर लगाता है तो उसको उठाकर चूमने की इच्छा होती है। ज्ञान हुआ और क्रिया हुई उठाने की, इनके बीच में इच्छा बैठी हुई है। ठीक इसी प्रकार से कोई मक्खी आकर उसी पैर में उसी स्थान पर बैठी तो ज्ञान हुआ, उसे हटाने की इच्छा हुई तब हमने हाथ से उसको उड़ाया। परमेश्वर की ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति और इन दोनों को मिलाने वाली इच्छा-शक्ति को प्रकट करने का साधन सूक्ष्म शरीर है। परमेश्वर की ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति, इच्छा-शक्ति तुम्हारे अन्दर प्रकट होती हैं। वे शक्तियाँ तुम्हारे में हैं, ऐसा नहीं समझना! चूँकि उसकी ज्ञान-शक्ति अनन्त है अतः अनन्त ज्ञान-शक्ति को प्रकट करने के लिए अनन्त मन बन गये। उसकी क्रिया-शक्ति भी अनन्त है उसे प्रकट करने के लिए अनन्त प्राण बने। जिसे तुम ‘मैं’ कहते हो वह उस परमेश्वर को प्रकट करने का अवलम्बन है, इससे ज़्यादा कुछ नहीं। ज्ञान और क्रिया शक्तियाँ प्रकट हों इसके लिए कोई ज्ञेय होना चाहिए। ज्ञान-शक्ति तब प्रकट होगी जब कोई चीज़ जानी जाय। इसी प्रकार, क्रिया-शक्ति प्रकट तब होगी जब कुछ काम किया जाय। जानने के योग्य और

करने के योग्य पंच महाभूतों का स्थूलरूप; इनसे ही बनी हुई चीजें जानी जाती हैं, इन्हीं से बनी हुई चीजें व्यवहार में लाई जा सकती हैं, इन्हीं के साथ क्रिया कर सकते हैं।

सूक्ष्म शरीर और बाह्य विषयों के ठीक मध्य में तुम्हारा अपना स्थूल शरीर बड़ा विलक्षण है! एक तरफ से तो यह छुआ जाता है, चखा जाता है, सूँघा जाता है, अर्थात् विषय बनता है। शरीर की एक निजी गंध होती है, चाहे पचास कपड़े पड़े हों उनको सूँघकर पता लग जाता है कि यह मेरा कपड़ा है और यह मेरे बेटे का कपड़ा है। आप लोगों ने देखा ही होगा कि जब चोर भाग जाता है तो उसको पकड़ने के लिए कुत्तों को छोड़ा जाता है, वे सूँघ कर पता लगा लेते हैं। वे किस चीज को सूँघते हैं? शरीर की गन्ध को ही सूँघते हैं। अतः यह शरीर सूँघा भी जाता है। देखा तो जा ही रहा है। देखने के मारे बड़े झगड़े भी होते हैं। कई साल पहले की बात है। एक लड़का विलायत से पढ़कर छह साल के बाद घर आया। घरवालों ने निश्चय किया था कि उसका अमुक लड़की के साथ ब्याह करेंगे अतः उससे कहा गया कि तुम्हारा ब्याह होने वाला है। चूँकि वह छह साल तक विदेश में रह चुका था इसलिए कहने लगा कि 'मैं ऐसे ब्याह कैसे कर लूँ? मुझे कम-से-कम लड़की तो दिखाओ।' घरवालों ने डाँटा 'अरे! शादी से पहले कैसे देखी जायेगी, शादी के बाद जितना मर्जी उतना देखते रहना, कौन मना कर रहा है?' काफी डाँटा, कई कुछ कह दिया, अन्त में दोस्त भी बीच में पड़े और सबने यह कहा कि लड़के को फोटो तो दिखा दो। उन लोगों ने लड़की वालों को खबर भेजी कि 'यह लड़का विलायत से पढ़कर आया है, इसका दिमाग गड़बड़ हो गया है। यह कहता है मैं फोटो देखूँगा इसलिए एक फोटो भेज दो।' वह बहुत छोटी जगह थी, वहाँ जैसा कैमरे वाला था उसने वैसी खींचकर फोटो भेज दी। फोटो तो अच्छी आयी नहीं थी तो उसने कह दिया 'मैं शादी नहीं करूँगा।' अब सब लोग एकदम उखड़ पड़े कि 'तुमने कहा था कि 'मैं फोटो देखकर ब्याह करूँगा', यह तो नहीं कहा था कि फोटो देखकर ब्याह नहीं करूँगा!' सब लोग पीछे पड़

गये, बोले कि किसी भी हालत में ब्याह करना पड़ेगा। अन्त में बेचारा क्या करता, मान गया और ब्याह हो गया। छह महीने बाद वह अपनी पत्नी से बोला 'तुमने कैसी फोटो भेजी थी?' मैंने तो देखकर ब्याह करने से मना कर दिया था! अगर शरीर नहीं दीखता होता तो यह झंझट काहे को होता। इसलिए शरीर देखा जाता है, सूँघा जाता है। एक तरफ तो यह शरीर दृश्य है इन्द्रियों का विषय है दूसरी तरफ तुम कहाँ बैठकर देख सकते हो? शरीर में ही बैठकर देख सकते हो। सूक्ष्म शरीर किसी गोलक में बैठेगा तब अपनी क्रिया करेगा। लोग समझते हैं कि हमारी आँख की इन्द्रिय दिगड़ गई थी, डाक्टर ने बना दी। इन्द्रिय सूक्ष्म महाभूत का कार्य है वह तो दीख ही नहीं सकती इसलिए डाक्टर उसको क्या सुधारेंगा! आँख के बैठने का जो यह गोलक है, बैठने की जगह है, इसमें गड़बड़ी हो जाय तो इन्द्रिय काम नहीं करेगी। इन्द्रिय वहाँ है, पर काम नहीं करेगी। इसी प्रकार सारी ही इन्द्रियाँ आँख, कान, नाक, जीभ, हाथ, पैर, वाणी ये सब हैं तो सूक्ष्म शरीर, परन्तु इनको बैठने के लिए स्थूल शरीर चाहिए। इसलिए हम लोग इसको संस्कृत में भोगायतन कहते हैं। जहाँ बैठकर भोग किया जाय वह भोगायतन है। एक तरफ तो यह दृश्य है और दूसरी तरफ भोग करने वाले जो साधन हैं वे सब इसमें बैठे हुए क्रिया कर रहे हैं। इसलिए इसे देखने वाला, सुनने वाला भी मानना पड़ता है। देखने आदि वाले तो इसके अन्दर प्राण, मन और इन्द्रियाँ हैं पर वे कार्य इसमें स्थित होकर ही करते हैं। चूँकि प्रकट इसमें होता है इसलिए यह एक तरफ से भोक्ता यानी भोग करने वाला भी है और दूसरी तरफ से भोग्य भी है। यह शरीर की विशेषता है।

परमेश्वर ने पंच महाभूतों से सब कुछ भोगने के साधन एवं पदार्थ बनाये। परमेश्वर ने सोचा बस, सृष्टि का काम हो गया, देखने वाला भी बना दिया और जो दीख रहा है वह भी बना दिया। अब ये अपना कार्य करेंगे, भोग करेंगे। पर वहाँ तो स्पन्दन भी नहीं हुआ! न शरीर ने कोई स्पन्दन किया न मन ने कोई स्पन्दन किया, न प्राण

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

ने कोई स्पन्दन किया, कुछ नहीं हुआ। वेद कहता है कि परमेश्वर ने विचार किया- अरे! यह कुछ कर क्यों नहीं रहा? तब समझ आया कि 'यह सब तो बना दिया लेकिन मेरे बिना यह कैसे काम करेगा? मैं इसमें जाऊँगा तभी प्राण भी चलेगा, मन भी चलेगा, इन्द्रियाँ भी चलेंगी, शरीर भी चलेगा, दीखेगा भी।' तब परमेश्वर ने निर्णय किया कि इसमें प्रवेश करें। पर प्रवेश कैसे करें? एक किलो का तुम्हारे पास वर्तन हो और एक किलोग्राम दूध होवे तो उसमें प्रवेश हो जाय पर एक मन दूध होवे तो उसमें प्रवेश कैसे हो? इसी प्रकार से वह परमेश्वर अनन्त है और ये छोटे-छोटे से वर्तन हैं, इनमें वह प्रवेश कैसे करे? और प्रवेश किये बिना यह काम नहीं करेगा! अतः परमेश्वर ने विचार किया कि अनन्त भी सान्त में प्रवेश कर सकता है। सूर्य कितना दूर है? करोड़ों मील दूर है। छोटे से काँच को सूर्य के सामने करो तो सारा सूर्य उसमें दीखता है। करोड़ों मील का सूर्य इतना बड़ा होने पर भी प्रतिबिम्बरूप से छोटे काँच में प्रवेश कर जाता है। इसी प्रकार वित्कुल छोटे से हमारे अन्तःकरण के अन्दर परमेश्वर ने प्रतिबिम्बरूप से प्रवेश किया। अन्तःकरण अनन्त हैं। अनन्तों में उसने प्रवेश कर लिया और संसार चल पड़ा, सब कार्य होने लग गये।

काम होने तो लगे पर ज्ञान और क्रिया शक्तियों का प्रयोग ऊटपटांग होने लग गया। जानते तो हम हैं कि क्या ठीक है पर हमारी इच्छा उसे करने की नहीं होती है। दुर्योधन से जब किसी ने पूछा 'अरे भाई, तुम ठीक काम क्यों नहीं करते?' उसने कहा 'मुझे सब पता है, तुम्हारे उपदेश की जरूरत नहीं है। मैंने भी उसी द्रोणाचार्य से पढ़ा है जिससे युधिष्ठिर ने पढ़ा है। मैं सब कुछ जानता हूँ, सारा मेरा पढ़ा हुआ है पर सब धर्म जानते हुए भी मैं करना नहीं चाहता। इसी प्रकार से मैं अधर्म को भी जानता हूँ, पाप को भी जानता हूँ वहाँ से मैं हटना नहीं चाहता।' इसलिए धर्म और अधर्म जान कर भी कुछ नहीं होता है। धर्म करोगे तो फल होगा, धर्म को केवल जानने से कुछ फल नहीं होगा। धर्म को कौन नहीं जानता है?

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

किसको पता नहीं है भारतवर्ष में कि सच बोलना धर्म है, दूसरे को ठगना पाप है? कई बार लोग कहते हैं कि धर्म का प्रचार होना चाहिए। धर्म का प्रचार तो है ही, उसके अनुसार आचरण नहीं है। मनुष्य की प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म और अधर्म की तरफ नहीं होती। इसका मूल कारण है कि हमारे अन्दर अज्ञान है। सचमुच में मेरा स्वरूप क्या है- इसका अज्ञान है। बहुत बार जब तुम यह जानते नहीं कि 'मैं कौन हूँ' तब तुम गलत काम करते हो। 'मैं' इसका वाप हूँ, ऐसा जानोगे तो पुत्र का अहित नहीं कर सकते। यदि नशे आदि किसी कारण से नहीं जानते तो उसका अहित कर डालते हो। ठीक इसी प्रकार से मेरा क्या स्वरूप है, इसको जब भूल जाते हैं तब पाप में प्रवृत्ति होती है। धर्म को जानने से धर्म नहीं करता ऐसा नहीं है। यह धर्म मेरे से सम्बन्ध वाला नहीं है, यह जान करके सारे पाप होते हैं।

मेरा स्वरूप क्या है? श्रीकृष्ण कहते हैं- 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः' मैं वह आत्मा हूँ जो सारे प्राणियों के हृदय में स्थित है। तुम झूठ किससे बोल सकते हो जब सबके हृदय में भी तुम ही हो? क्या अपने आप से झूठ बोलने का काम कर सकते हो? तुम ठगते जिसको हो उसमें तुम ही बैठे हुए हो। इस बात को यदि तुम जानोगे तो तुम्हारी ठगने की प्रवृत्ति होगी नहीं, झूठ बोलने की प्रवृत्ति होगी नहीं। अतः अपने स्वरूप का अज्ञान न होने से ही मनुष्य सारे पाप कर्म करता है। अपने स्वरूप के अज्ञान से अधर्म होता है, अधर्म से दुःख होता है। दुःख का साक्षात् कारण तो अधर्म है पर अधर्म होता क्यों है? अपने आत्मा का अज्ञान होने के कारण। परमेश्वर ने सृष्टि की और जीवरूप से उसमें प्रवेश किया तब प्रवेश करने से पहले उसने बुद्धिमान् की तरह सोचा। मान लो अकस्मात् हमारी जेब की गिन्नी कुएँ में गिर गई, गिन्नी निकालने के लिए कुएँ में जाना ही पड़ेगा। बेवकूफ की तरह उसमें यों ही नहीं कूद जाओगे क्योंकि अन्दर जाकर मिल भी गया तो बाहर कैसे निकलोगे? क्या चिल्लाते रहोगे कि 'कोई रस्सी डालो, रस्सी डालो।' क्या पता कोई

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

कब सुने, कब रस्सी डाले! इसलिए कुएँ में उतरने से पहले रस्सी का इन्तजाम करते हो। रस्सी को पेड़ से बाँध देते हो फिर रस्सी को अन्दर डालकर उससे उतरते हो और अपनी गिन्नी उठाकर वापस उसी के सहारे आ जाते हो। जो लोग स्काउटिंग करते हैं वे घोर जंगल में जाते हैं तो पेड़ों पर निशान लगाकर जाते हैं कि वापस आयेंगे तो इन निशानों को देखकर आ जायेंगे। हम लोग भी अपनी बुद्धि से पहले निकलने की व्यवस्था करते हैं तब अन्दर जाते हैं, तो परमेश्वर ने भी प्रवेश करने से पहले निकलने का रास्ता सोचा। इसलिए कृष्ण-यजुर्वेद की श्वेताश्वतर शाखा कहती है कि परमात्मा पहले तो प्रथम जीव ब्रह्मा को बनाते हैं फिर उसे वेद प्रदान करते हैं। ब्रह्मा पद पर वह पहुँचता है जिसने पूर्व कल्प में सबसे ज्यादा शुभ कर्म किये और सबसे ज्यादा शुभ उपासना की। सृष्टि के आदि में पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया जाता है। उसमें कर्म और उपासना पूरी है। शुक्ल यजुर्वेद में वर्णन है कि ब्रह्माजी चारों तरफ नजर डालते हैं, कोई दीखता नहीं तो जैसे बच्चा अकेला होने पर रोता है वैसे वे भी रो दिये पर शुद्धचित्त होने से तत्काल विचार आया कि कोई दूसरा हो तो उससे डर लगना चाहिए। यहाँ कोई दूसरा तो है ही नहीं, मैं किससे डर रहा हूँ? सारे डर का कारण अपने से भिन्न कुछ होता है।

यह सारा संसार हमको भय क्यों देता है? क्योंकि यह हमसे अलग है। जब तक तुमको अपने से अलग कोई चीज प्रतीत होगी तब तक उससे भय होगा। जब यह ज्ञान होता है कि दूसरा कोई नहीं है तब भय हट जाता है। इतना बड़ा प्रपंच दीख रहा है पर यह मुझ से भिन्न है नहीं। अगर इसका छोटा-सा नमूना देखना चाहो तो सपने को याद करो। वहाँ सड़क, मोटर, फैक्ट्री, पत्नी, बच्चे सब कुछ हैं पर जैसे ही आँख खुली वैसे ही क्या निश्चय होता है? वहाँ कुछ नहीं था। वहाँ अब कुछ नहीं रहा यह निश्चय नहीं होता वरन् जब दीख रहा था तब भी नहीं था। यह सारा इतना लम्बा-चौड़ा

श्रीअर्बुदविश्वनाथ वार्षिक उत्सव, सन् २००३

१५

संसार हमें दीख रहा है। जब हम इस संसार के वास्तविक स्वरूप को देखते हैं तब जग जाते हैं कि यह क्या है। निश्चय होता है कि जब दीख रहा था तब भी कुछ नहीं था। ज्ञान होने के बाद नहीं रहा ऐसी बात नहीं है, वरन् जब दीख रहा था तब भी नहीं था। भय तभी जायेगा जब तुमको दूसरा दीखना हट जायेगा। दूसरा दीखना कैसे हटे? जब यह पता लगता है कि इस सबको बनाने वाला मैं हूँ तब द्वितीय की निवृत्ति हो जाती है। धागे से तुम कपड़े पचासों तरह के बना लो लेकिन रहेगा तो वह धागा ही। उसी प्रकार से यह सारा जगत उस अनन्त परमात्मा से बना है इसलिए परमात्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं है। एक बार हमारे लिए किसी ने मोजा बनाया। वह जरा बड़ा बन गया था। हमने कहा 'यह तो बेकार हो गया, किसी बड़े पैर वाले को दे देंगे।' वह बोली 'नहीं-नहीं हमें वापस दे दीजिए।' हमने उसके पैर की तरफ देखा, कहा 'तुम्हारा पैर तो इतना बड़ा है नहीं, इससे क्या करोगी?' वह बोली, 'कुछ नहीं, इसको खोलकर छोटा बना दूँगी।' जो मोजा बनाने वाला है उसको ऐसा नहीं लगता कि मोजा ऊन से अलग है। उसने जो पहले ऊन लिया था वही मोजे के रूप में है। जो इस बात को नहीं समझता उसे लगता है कि जैसे दूध से दही बन गया ऐसे ही ऊन से मोजा बन जाता होगा! मोजा तो केवल ऊनरूप ही है। इसी प्रकार सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा से बना हुआ यह सारा जगत् परमात्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं है। परमात्मा कौन है? जिसका मैं प्रतिबिम्ब हूँ। परमेश्वर ने इस शरीर में प्रवेश किया क्योंकि यह उनके बिना नहीं चलता है। इतना याद रखना कि मैं इस शरीर का नाम नहीं है क्योंकि दूसरा आकर दरवाजा खटखटाता है पूछे 'कौन है?' वह कहता है 'मैं हूँ।' हम उससे यह नहीं कह सकते कि 'अरे! मैं तो मैं हूँ, तू कौन है?' जितना मेरा ट्रेड-मार्क मैं है उतना ही उसका भी ट्रेड मार्क मैं ही है। दुनियाँ में कोई भी आदमी होगा सबका नाम मैं है। जहाँ-जहाँ अन्तःकरण है वहाँ अहंकारात्मिका वृत्ति है, वहाँ मैं है। सारा जगत् किसने बनाया? मैंने बनाया।

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

मैं कौन? आरम्भ में बतलाया था कि प्राणिमात्र के हृदय में वही मैं है। हम लोगों में और परमात्मा में फर्क यह है कि वे कहते हैं कि मैं सारे प्राणियों के हृदय में रहने वाला आत्मा हूँ। हम कहते हैं कि मैं साढ़े तीन हाथ के खाक के पुतले में रहने वाला आत्मा हूँ, मैं से हमारा भी मतलब आत्मा है, मैं से श्रीकृष्ण का भी मतलब आत्मा है, पर वे मैं उस व्यापक आत्मतत्त्व को कहते हैं जबकि हम केवल इस साढ़े तीन हाथ के पुतले को कहते हैं। सभी साढ़े तीन हाथ के पुतलों में वही है, उसके सिवाय और कोई नहीं। जब सारे प्राणियों में रहने वाला जो अपना स्वरूप है उसको समझ लिया जाता है, जान लिया जाता है तब कभी मनुष्य किसी प्रकार का पाप नहीं कर सकता। पाप करने के लिए द्वितीय की दृष्टि चाहिए। द्वितीय की दृष्टि से ही पाप होते हैं। जब दूसरा है नहीं, जहाँ भी जो कोई है वह मैं हूँ, इस अद्वैत भाव की प्राप्ति होती है तब यह प्रपंच उपशान्त हो जाता है। जब दूसरा न समझ कर तुम्हारी प्रवृत्ति निवृत्ति दीखेगी तब प्रपंच आगे नहीं बढ़ेगा, उपशान्त होता रहेगा। पंखा कब तक चलता है? जब तक बिजली रहती है। पर बिजली बन्द होते ही पंखा बन्द नहीं होता, थोड़ी देर तक चलता रहता है, धीरे-धीरे हल्का पड़ कर फिर बन्द होता है। बिजली बन्द होने के बाद भी वह जो चल रहा है वह बिजली से नहीं चल रहा है। पूर्व की गति का जो प्रभाव रह गया उससे चल रहा है। इसी तरह वेदान्त शास्त्रों के अन्दर 'चलना' तो अज्ञान है, जब अज्ञान दूर हो जाता है तब जो अन्तःकरण के अन्दर, प्राण के अन्दर संस्कार पड़े हुए हैं वे अज्ञान से नहीं चल रहे हैं, जो पड़े हुए संस्कार हैं उनसे ज़रा चलता है थोड़ी देर। पर इतना याद रखना कि ऐसा कभी नहीं होता कि बिजली बन्द होने के बाद पंखा तेज़ हो जाय वरन् धीमा पड़ता जाता है। इसी प्रकार से ज्ञान के बाद प्रवृत्ति-निवृत्ति धीमी होती चली जाती है। प्रपंच उपशान्त हो जाता है, उपशम होकर फिर वहाँ किसी प्रकार की अशान्ति नहीं है। सारे दुःखों का कारण अशान्ति से शुरू होता है। भगवान् ने गीता में नियम कह दिया है- 'अशान्तस्य कुतः सुखम्'

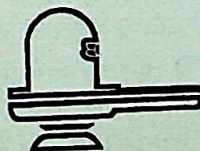
पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

जो शान्त नहीं है वह कभी सुखी नहीं हो सकता। यह बात आजकल के लोगों को समझ नहीं आती। वे सोचते हैं कि जितनी अशान्ति करेंगे उतने सुखी होंगे और चारों तरफ का वातावरण भी यही कहता है- अशान्ति करो। पहले कोई बाजा बजाता था तो हल्की आवाज़ में बजाता था, अब बाजा बजाते हैं तो जितना ज़्यादा शोर हो सके उतना उस बाजे को अच्छा मानते हैं। इसी प्रकार पहले मन्दी रोशनी थी, तेल का दीपक जलाकर काम हो जाता था। अब बड़े से बड़ा लट्ठू जलाने को अच्छा मानते हैं। पहले धूप आती थी बड़ी हल्की सुगन्धि होती थी अब धूप आती है तो इतनी तेज कि जब उसकी गन्ध आती है तो कई बार छींकें आने लगती हैं, परन्तु लोगों को बहुत पसन्द आती है। हमारे एक धूप बनाने वाले हैं, बहुत साल पहले हमने उनको कहा कि आप शुद्ध गुग्गल और घी की धूप क्यों नहीं बनाते हो? उन्होंने कहा 'स्वामीजी! बिकता नहीं इसलिए नहीं बनाते। उसमें डीजल और आधुनिक चीजें डालते हैं तब तेज बनता है।' चार-छः महिने के बाद आये तो एक बण्डल बनाकर ले आये उसमें शुद्ध गुग्गल और शुद्ध घी का प्रयोग किया था। हमने वह धूप कई लोगों को दिखाई। प्रत्येक व्यक्ति यही कहता है कि बहुत निम्न स्तर की है। हमने कहा कि बेचारे ठीक ही कह रहे थे कि हल्की गन्ध लोगों को पसन्द नहीं है, तेज़ गन्ध चाहिए। जितना-जितना प्रपंच का उपशम होगा उतना-उतना शान्त होते जाओगे और शान्ति से ही सुख होता है। प्रपंच को जितना तेज करते जाओगे उतनी अशान्ति बढ़ती जायेगी और दुःख बढ़ता जायेगा। आज चारों तरफ यही देखने में आता है। पहले सौ आदमियों से पूछते थे, 'कैसे हो?' पिछ्यानब्बे कहते थे 'महाराज भगवान् का दिया हुआ सब कुछ है, शान्ति से चल रहा है।' यद्यपि उनमें से कई ऐसे थे जिनके पास शायद दो या तीन घोती होती थी। पैदल चलकर आते थे। बैलगाड़ी में बैठने को भी पैसा नहीं होता था लेकिन उससे कोई अशान्ति उनको अनुभव नहीं होती थी। इस समय मर्सडीज से उतरेंगे, घर के

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

अन्दर कम से कम पच्चीस साड़ियाँ लटकी होंगी। जब उनसे बात करते हैं तो यही निकलता है 'महाराज! व्यापार आजकल बड़ा ढीला है।' न खाना कम हो रहा है न कपड़ा कम हो रहा है न गाड़ी का तेल कम हो रहा है। मार्केट ढीली है यानी जितना बढ़ाना चाहते हो उतना बढ़ नहीं रहा है, जितनी अशान्ति चाहते हो उतनी अशान्ति नहीं हो रही है। यह जो प्रपंचोपशम की शान्ति है यही शिव का स्वरूप है।

शिव कैसे हैं? अद्वैतम् कोई द्वितीय वहाँ नहीं है। संसार का कण-कण और क्षण-क्षण शिवस्वरूप है। इस स्वरूप को हमेशा सामने रखना चाहिए कि शिव कैसा है- प्रपंच का उपशम है, शान्त है। ऐसा नहीं समझ लेना कि यह सुनने से शान्ति हो जायेगी। यह तो तुम्हारे हाथ में एक नापने का औजार दे दिया। दस दिन, बीस दिन, महिने भर में यह देखो कि हम प्रपंचोपशम के समीप पहुँच रहे हैं, शान्ति के स्वरूप के समीप पहुँच रहे हैं या नहीं। यदि दूर हो रहे हैं तो जानो हम गलत रास्ते जा रहे हैं, शिव के रास्ते नहीं जा रहे हैं अशिव के रास्ते जा रहे हैं। सर्वथा शान्त शिव स्वयं ही है। जब तुम उनसे एक हो जाओगे तभी शान्ति की प्राप्ति होगी। अभी तुमको केवल इतनी प्राप्ति करनी है कि उसकी तरफ जाओ उससे दूर मत जाओ। भगवान् सायणाचार्य लिखते हैं कि जिनको वेद सुनने को नहीं मिलता उनको तो सुनने का भी भाग्य नहीं है, उन्होंने इतने अशुभ कर्म किये हैं। आपका भाग्योदय हुआ जो आपको वेदवाणी सुनने को मिलती है, उसके अर्थ का विचार करने का मौका मिलता है। हमेशा इसी प्रकार भाग्योदय होता रहे, आप लोग निरन्तर शिव की तरफ बढ़ते रहें और इस जन्म के अन्दर दुर्लभ शिव-प्राप्ति करें। यही आप लोगों को आशीर्वाद है।



पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

श्रीकृष्णजन्माष्टमी

आज भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म दिन है। भगवान् कृष्ण का जन्म किन परिस्थितियों में हुआ? पूर्व सृष्टि का संहार भगवान् शंकर ने कालाग्निरुद्ररूप से किया। सृष्टि का संहार करने के बाद, संहार करने वाले एकमात्र शिव ही रह गये। उनकी जो शक्ति, माया वह बड़ी विलक्षण है, उसके स्वरूप को समझा नहीं जा सकता। वह शक्ति इच्छारूप में परिणत हो कर भगवान् शंकर से सृष्टि का कार्य प्रारम्भ होता है। सृष्टि के आरम्भ में आकाश आदि पंच महाभूत पैदा होते हैं। इस प्रकार क्रम से सारे विश्व की सृष्टि करते हुए मनुष्य की सृष्टि होती है। मनुष्य की विलक्षणता है कि वह एक पीढ़ी के ज्ञान को शब्दों के द्वारा दूसरी पीढ़ी को दे सकता है। ज्ञान-परम्परा मनुष्य जाति के अतिरिक्त और किसी में नहीं है। वया बहुत सुन्दर घोंसला बनाती है, पानी की एक बूँद उसमें नहीं जा सकती, सब तरफ से सुरक्षित रहता है। परन्तु जैसा दो हजार साल पहले वह बनाती थी वैसा ही आज भी बनाती है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो पाता। इसी प्रकार से बीवर नाम का एक प्राणी बड़ा सुन्दर बन्ध बनाता है परन्तु जैसा बन्ध वह दो-चार हजार साल पहले बनाता था वैसा ही आज भी बनाता है। मनुष्य की विशेषता यह है कि अपने ज्ञान को अगली पीढ़ी को दे देता है इसलिए अगली पीढ़ी को उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। वह उस ज्ञान के सहारे से और आगे ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार ज्ञान की परम्परा चलती रहती है और ज्ञान का विकास होता चला जाता है। यह मनुष्य जाति की विशेषता है। ज्ञान-परम्परा को प्रारम्भ करने वाले ऋषि लोग हैं। ऋषियों के द्वारा ही उस परमब्रह्म परमात्मा ने, परम शिव ने ज्ञान का मार्ग प्रवृत्त किया। उसके बिना हमारे पास भाषा का साधन नहीं हो पाता और बिना भाषा के साधन के ज्ञान अगली पीढ़ी को नहीं दे सकते थे। मनुष्य जाति की

श्रीकृष्णजन्माष्टमी

ज्ञान-परम्परा को प्रारम्भ करने के लिए सबसे पहले सप्तऋषि पैदा किये। उन सप्तऋषियों में कश्यप ऋषि सर्वप्रथम प्रादुर्भूत हुए। कश्यप महर्षि की दो पत्नियाँ थीं- एक दिति और दूसरी अदिति। दिति से दैत्य पैदा हुए और अदिति से आदित्य पैदा हुए। दिति बड़ी थी, दैत्य बड़े थे। अदिति छोटी थी, आदित्य भी छोटे थे, बाद में हुये। दिति शब्द का अर्थ होता है किसी चीज़ को काटना। भाषा में जो काटने वाला अस्त्र है उसको दाँता कहते हैं जो दिति का ही अपभ्रंश है। अतः सारे संसार को टुकड़े-टुकड़े रूपों में देखना यह दिति की सन्तानों का कार्य है। दैत्य हमेशा विभाजन करते हैं, विभक्त करते हैं, भेदमूलक सृष्टि को बढ़ाते हैं। भेदमूलक विचार यानी द्वैतमूलक विचार सामान्य रूप से प्राणिमात्र में उपस्थित रहता है। उसके लिए कुछ विचार करने की ज़रूरत नहीं पड़ती, भेद दृष्टि के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। सब चीज़ें अलग-अलग तो हर एक प्राणी को दीखती हैं परन्तु उनमें द्वैतभाव मिटाकर अद्वैतभाव से उनकी एकता को देखना - यह प्रयत्नसाध्य है, यह बाद में शिक्षा से आता है। इसीलिए दैत्य बड़े हैं और आदित्य छोटे हैं।

इन दोनों का आपस में संग्राम वेदों के अन्दर देवासुर-संग्राम के नाम से बहुत विस्तार से वर्णित है। केनोपनिषद् में वर्णन है : देवता और असुरों का युद्ध हुआ और परमेश्वर ने देवताओं को जिताया। अतः यह जो देवासुर संग्राम है अर्थात् द्वैत भावना का विस्तार करने वाले और अद्वैत भावना का विस्तार करने वाले, इनका संघर्ष है, यह वेदों से लेकर पुराणों में, इतिहासों में सर्वत्र वर्णित है। जीवन में भी चारों तरफ देखते हैं, हमेशा ही अद्वैत और द्वैत भावनाओं का संघर्ष सब जगह देखने में आता है। महाभारत काल के अन्दर भी ऐसी ही परिस्थिति आई। देवासुर संग्राम में देवताओं को जिताने वाले परमेश्वर ही होते हैं। हमेशा याद रखना चाहिए कि देवता स्वयं अपने बल से जीत जाते हों ऐसा नहीं है, क्योंकि परमेश्वर उनका सहायक है इसलिए वे जीत जाते हैं। जब वह बहुत हारने लगते हैं तब परमेश्वर की तरफ जाते हैं। महाभारत के समय

में भी ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न हुई तो सब देवता लोग भगवान् विष्णु की शरण में उपस्थित हुए और उनसे उन्होंने प्रार्थना की -

‘नाकारणात् कारणाद्वा कारणाकारणाद् न च।

शरीरग्रहणं वापि धर्मत्राणाय केवलम्॥’ (विष्णुपुराण ५.१.५१)

उन्होंने कहा- न तो आप किसी पुण्य से उत्पन्न होते हैं, न किसी पाप से उत्पन्न होते हैं, न पुण्य-पाप के मिलने से उत्पन्न होते हैं। सामान्य रूप से शरीर की प्राप्ति स्वर्गादि लोकों में पुण्य से प्राप्त होती है, नरकादि लोकों में पाप से प्राप्त होती है, मनुष्य लोक में पुण्य और पाप मिलकर प्राप्त होती है, परन्तु बिना कर्म के कोई शरीर उत्पन्न नहीं होता। परमेश्वर शरीर ग्रहण करते हैं केवल धर्म की रक्षा के लिए। न उसका कारण पुण्य है और न उसका कारण पाप है। यही वाकी सब शरीरों से उनके शरीर की विलक्षणता है। उसके अन्दर न पुण्य कारण है न पाप कारण है और न पुण्य-पाप का मिश्रण कारण है। उसका तो केवल धर्म की रक्षा करना ही कारण है। चूँकि सृष्टिप्रक्रिया में पालन का कार्य भगवान् विष्णु का है अतः अवतार भी भगवान् विष्णु के ही होते हैं। वे ही शरीर ग्रहण करते हैं। जब उनकी बहुत प्रार्थना देवताओं ने की तो अन्त में भगवान् ने प्रकट होकर कहा - ‘हे ब्रह्मा, सारे देवताओं के साथ तुम्हें जो कुछ मुझ से लेने की इच्छा है उसे कहो, जो कुछ भी तुम कहोगे वह सब सिद्ध हो ही जायेगा यह निश्चित समझो।’ ब्रह्मा ने सबसे पहले उनकी स्तुति की। प्रार्थनामात्र से प्रकट होकर विष्णु भगवान् ने तो कह दिया कि ‘जो माँगोगे सो पूरा हो जायेगा’, लेकिन निवेदन करने से पूर्व सबसे पहले उनकी स्तुति, उनको नमन ज़रूरी है। यह भारतीय परम्परा है कि किसी से किसी चीज की इच्छा की जाती है तो उसकी स्तुति करना आवश्यक समझा जाता है। ब्रह्मा ने कहा -

‘नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः सहस्रबाहो बहुवक्त्रपाद।

नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाशसंस्थानकराऽप्रमेय॥’ (श्लो. ५५)

हम भगवान् को नमस्कार करते हैं। जिसे नमस्कार करते हैं वह कैसा है? ‘सहस्रबाहो’ उसके अनन्त हाथ हैं, अनन्त मुख हैं और

श्रीकृष्णजन्माष्टमी



अनन्त पैर भी हैं। भगवान् विष्णु विश्वरूप लेकर प्रकट हुए। अतः उनको नमस्कार भी हजारों बार करते हैं।

फिर ब्रह्माजी ने पृथ्वी की पीडा सुनाई। हे देव! यह पृथ्वी महान् असुरों के द्वारा पीडित हो रही है। अब यह केवल आपके ही परायण है, आपकी ही शरण में है। हम लोग वृत्रासुर के समय से सभी दैत्यों के हमेशा दुश्मन ही हैं। दैत्य लोग आदित्यों के ऊपर किसी कारण से रोष नहीं करते, उनका स्वभाव ही है कि आदित्यों के प्रति द्वेष करना। भेदवादी अभेदवादियों के प्रति स्वभाव से ही हमेशा झगड़ा करते हैं। वर्तमान काल में भी चारों तरफ दैत्यों का व्यवहार यही देखा जाता है। बार-बार एक कहता है 'भाई! हम तो शान्ति के लिए प्रयत्न करते हैं'; लेकिन सामने वाला कभी भी उसमें सहयोग करने के लिए तैयार नहीं होता है। ब्रह्माजी ने कहा कि हम सब लोग दूसरे सहारों से रहित हो कर आपका सहारा लेते हैं। आपकी जो आज्ञाएँ हैं उनका ही पालन करते हुए हम लोग हमेशा रहते हैं। यही देवताओं का लक्षण है। परमेश्वर ने जो नियम बनाये हैं उन नियमों के अनुसार चलना - यही देवताओं का लक्षण है और तभी परमेश्वर प्रसन्न होकर उनके लिए शरीर ग्रहण करके उनका संरक्षण करते हैं। भगवान् ने भी गीता में ये ही दो कारण बतलाये - 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' दुष्कर्मियों का नाश करने के लिए और जो परमात्माज्ञा में रहने वाले साधु पुरुष हैं उनके रक्षण के लिए मैं पैदा होता हूँ। साधुपरित्राण पहले रखा है। अगर शास्त्र की आज्ञा के अनुसार चलने वाले हैं तब उनका रक्षण करने के लिए दुष्कर्मियों का नाश आवश्यक होता है। कुछ लोग पूछते हैं कि धर्म के ऊपर इतनी आपत्ति आई है, भगवान् का अवतार कब होगा? इसकी ज़िम्मेदारी भगवान् के ऊपर नहीं समझ लेना! बहुत से लोग कहते हैं कि जितना पाप बढ़ेगा उतना ही भगवान् जल्दी आयेंगे। वे सोचते हैं कि पाप बढ़ाने से भगवान् आयेंगे। तुम शास्त्र- आज्ञा का पूरी तरह पालन करोगे और दुष्कर्मी उसमें रुकावट डालेंगे तब तुम्हारी रक्षा के लिए भगवान् आयेंगे। परमेश्वर की आज्ञा क्या है?

वेद और स्मृतियाँ ये ही भगवान् की आज्ञा हैं। जो उन आज्ञाओं को नहीं मानता, अपने मन से हिसाब लगाता है, कहता है 'नहीं-नहीं, इस युग के अन्दर ये कहाँ चल सकता है? वह भगवान् की आज्ञा का छेदन करने वाला है, उनसे द्वेष करने वाला है। इसलिए ब्रह्मा ने कहा कि हम लोग सर्वथा आपकी आज्ञा पर ही चलते हैं अतः हमें किसी दोष की प्राप्ति नहीं है।

‘एवं संस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः।

उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने॥’ (६०)

इस प्रकार जब ब्रह्मा ने स्तुति की, सर्वथा उनकी शरण ग्रहण की तब भगवान् ने अपने सिर के दो बाल उखाड़े, एक सफेद वाल था और दूसरा काला बाल था। उन्होंने कहा ‘देवताओ! मेरे जो ये दोनों बाल हैं ये पृथ्वी तल पर अवतार ग्रहण कर पृथ्वी के क्लेश को हटायेंगे।’ भूभार हटाने का कार्य तो भगवान् ने वालों के द्वारा कर दिया। जो सफेद बाल था वही बलराम होकर पैदा हुए इसलिए बलराम गोरे थे और जो काला केश था उससे भगवान् कृष्ण पैदा हुए इसीलिए वे काले रंग के थे। साधुरक्षा और असुरविनाश करेंगे तो कौन? भगवान्; परन्तु एक नियम है कि किसी कार्य को करो तो अपने साथियों को भी बड़ाई देनी चाहिए। वर्तमान काल में साथियों से काम कराके बड़ाई लेते हैं। काम तो साथियों ने किया पर बड़ाई हम लेते हैं। परमेश्वर इस आदर्श को रखते हैं कि काम तो तुम करो और बड़ाई अपने साथियों को दो! प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर आत्मसम्मान की वृद्धि करानी चाहिए, आत्मसम्मान की हानि नहीं करानी चाहिए। इसलिए नारायण ने कहा कि मैं तो अवतार ले ही रहा हूँ लेकिन आप सब लोग भी अपने-अपने अंशों से पृथ्वीतल पर अवतार लेकर जो पहले पैदा हुए हैं उन असुरों के साथ युद्ध प्रारम्भ करो। इस प्रकार युद्ध करने से वे सारे दैत्य नष्ट हो जायेंगे। देवता लोगों ने विचार किया कि ‘हमने पहले ही बहुत चेष्टा की लेकिन हम तो ख़त्म नहीं कर पाये’, यह भाँपकर साथ में ही भगवान् कहते हैं ‘मद्दृक्पातविचूर्णिताः’ वैसे तो वे मेरी दृष्टि पड़ने से ही ख़त्म हो

श्रीकृष्णजन्माष्टमी



पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

जाने वाले हैं। परन्तु तुम लोग युद्ध करो। वसुदेव की जो देवीसमान पत्नी देवकी है, उसमें आठवें गर्भरूप से मेरा यह केश पैदा होने वाला है।

वहाँ पैदा हो कर -

‘अवतीर्य च तत्राऽयं कंसं घातयिता भुवि।

कालनेमिं समुद्धूतम् इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः॥’ (६४)

यह कंस को मारेगा। जो कालनेमि नाम का असुर था वही अब कंस होकर उत्पन्न हुआ है। इसके द्वारा बतला रहे हैं कि दैत्य नये नहीं हुआ करते, वे ही पुराने दैत्य हैं जो बार-बार कालान्तर में पैदा होते हैं और पृथ्वी के ऊपर भार को बढ़ाते हैं। इसका मतलब यह नहीं समझ लेना कि केवल वही व्यक्ति पैदा होता है। संसार के अन्दर दो प्रकार के प्रवाह हैं। एक प्रवाह तो जाति का है और दूसरा प्रवाह व्यक्ति का है। व्यक्तियों के प्रवाह तो ख़त्म होते रहते हैं, एक-एक व्यक्ति निकलता रहता है, लेकिन उस चीज़ की जाति बनी रहती है वह ख़त्म नहीं होती। जैसे घड़े की जाति घटत्व है। एक-एक घड़ा तो नष्ट होता रहता है, घट व्यक्ति तो नष्ट होता रहता है, पर घटत्व जाति वही बनी रहती है। इसी प्रकार पदार्थों की कामना है, पदार्थ तो बदलते रहेंगे, कभी हाथी की इच्छा होती थी कभी रोल्स रायस की इच्छा होती है। इच्छा का विषय तो बदल गया परन्तु इच्छा तो वही बनी रही कि हमारे पास बढ़िया वाहन होवे। कभी अच्छे धनुष की इच्छा होती थी, कभी ए.के.४७ की इच्छा होती है लेकिन हथियार की इच्छा तो वही रही। व्यक्ति हथियार तो बदले परन्तु जाति हथियार वही रही। इसी प्रकार सब चीज़ों में समझ लेना चाहिए। इसी तरह से जब किसी भी कामना में विरोध आयेगा तब क्रोध पैदा होगा। यह जो असुरों की आसुरी भावों की जाति है यह वैसी की वैसी रहती है। व्यक्ति नष्ट हो जाय, वह बात दूसरी है। इस प्रकार से कालनेमि ही कंस के रूप में आया है - भगवान् तो इस बात को कह कर अन्तर्धान हो गये। उनका आना-जाना नहीं होता है क्योंकि वे तो सर्वत्र व्यापक हैं, पहले ही कहा कि विश्वरूप

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

हैं। वे तो केवल प्रकट हो जाते हैं, तुमको दीखने लगते हैं, फिर अन्तर्धान हो जाते हैं, नहीं दीखते। वस यही फर्क पड़ता है, बाकी वे तो जैसे हैं वैसे ही रहते हैं।

उसके बाद वसुदेव-देवकी के पुत्र उत्पन्न हुए। वे पुत्र कौन थे यह भी बतला दिया है। हिरण्यकशिपु के भाई कालनेमि के छः पुत्र एक-एक करके देवकी के गर्भ में पैदा हुए क्योंकि उन्हें अपने बाप के हाथों ही मरने का शाप मिला हुआ था।

योगनिद्रा वैष्णवी महामाया है जिसके द्वारा यह सारा जगत् अविद्या से मोहित है। उसे भगवान् हरि ने सारी व्यवस्था समझाई कि देवकी के गर्भ में किन्हें कैसे पैदा करना है। महामाया को निद्रा कहा। इसी से भगवान् सो जाते हैं जैसा कि सप्तशती में वर्णन है। वे स्वयं अपनी महामाया से खुद को ढाँक लेते हैं। उसी को नारायण ने कहा 'हे निद्रे! मेरे आदेश से तुम जाओ और एक-एक करके पहले तो छह पुत्रों को देवकी के पेट में ले जाओ, उनको कंस मार देगा। अन्त में शेष नाम का जो मैंने अपने शरीर से केश निकाला था, वह सप्तम पुत्र रूप से देवकी के गर्भ में आयेगा। उसको वहाँ से उठाकर रोहिणी के गर्भ में डाल देना।' इसीलिए बलदेव को रोहिणी-पुत्र कहा जाता है। लोक में यह प्रसिद्ध हो गया कि 'देवकी का गर्भ गिर गया' लेकिन गिरा नहीं था, देवकी के पेट से उसे रोहिणी के गर्भ में ले जाया गया ताकि कंस उसका कोई नुकसान नहीं कर सके। संस्कृत में खींचने को संकर्षण कहते हैं। चूँकि गर्भ से खींचकर लाया गया इसलिए, गर्भ का संकर्षण करने के कारण बलराम का एक नाम संकर्षण भी पड़ गया। भगवान् ने निद्रा शक्ति से कहा कि 'उसके बाद मैं देवकी के पेट में आऊँगा और यशोदा के गर्भ में तुम चली जाना। 'प्रावृट् काले' वर्षा काल के भाद्रपद के मास में कृष्ण-पक्ष की अष्टमी को रात्री के समय मैं उत्पन्न होऊँगा और नवमी को प्रातःकाल तुम्हारा जन्म होगा। यशोदा जहाँ सोई हुई होगी वहाँ मुझे देवकी के पास से ले जाकर वसुदेव पहुँचा देंगे और तुम्हें लाकर देवकी के पास रख देंगे। नवमी प्रातःकाल कंस तुम्हें चट्टान के ऊपर

श्रीकृष्णजन्माष्टमी

२३

मारेगा और तुम अन्तरिक्ष में जाकर अपने स्वस्थान को प्राप्त कर लोगी। इस प्रकार मेरी वहिन के रूप में प्रसिद्ध होने से इन्द्र आदि सभी देवता तुम्हारी प्रार्थना करेंगे। तुम शुम्भ-निशुम्भ आदि अनेक दैत्यों को मार कर पृथ्वी में अनेक स्थानों में जहाँ देवी पीठ हैं वहाँ वास करोगी। तुम ही ऐश्वर्य हो, तुम ही नम्रता हो, तुम ही क्षमा हो, तुम ही कान्ति हो, तुम ही पृथ्वी हो, धैर्य हो, लज्जा हो, पुष्टि हो। जितने भी इस प्रकार के स्वरूप हैं वे सब तुम्हारे ही स्वरूप होंगे। इतना ही नहीं -

‘ये त्वाम् आर्येति दुर्गेति वेदगर्भांभ्विकेति च।

भद्रेति भद्रकालीति क्षेमदा भाग्यदेति च॥’ (८४)

‘जो तुमको प्रातःकाल और सायंकाल आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेमदा, भाग्यदा - इन नामों से स्मरण करेंगे वे जिस-जिस चीज़ की प्रार्थना करेंगे वे सब मेरी कृपा से हो जायेगा। प्रार्थना तुम्हारी करेंगे लेकिन प्रार्थना पूरी मैं करूँगा।’ प्रार्थना जिससे करते हो वह मायिकरूप होता है परन्तु फल देने वाला तो ईश्वर ही है। ‘ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तो तुम्हारी इस प्रकार से नाम-स्मरण इत्यादि से पूजा करेंगे परन्तु जो शूद्र, स्लेच्छ आदि हैं, वे भी तुम्हारा पूजन तो करेंगे पर अपने स्तर के ढंग से करेंगे। शूद्र आदि शराब के द्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे, मांस के द्वारा करेंगे और भी इस प्रकार के अन्य पदार्थों के द्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे। लेकिन तुम उनकी उसी प्रकार की पूजा से प्रसन्न हो कर उन लोगों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करोगी।’ प्राणी सात्त्विक, राजस, तामस सब प्रकार के हैं। भगवती महाप्रकृति सात्त्विक गुण वालों को सात्त्विक फल देती है, राजस गुण वालों को राजस फल देती है, तामस गुण वालों को तामस फल देती है। जो जैसी प्रार्थना करता है वैसी ही उसकी प्रार्थना वे पूरी कर देती हैं। भगवान् की आज्ञा के अनुसार योगमाया ने सारी व्यवस्था कर दी

‘सप्तमे रोहिणीगर्भे प्राप्ते गर्भं ततो हरिः।

लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश ह ॥’ (५.२.२)

जब सातवाँ गर्भ रोहिणी में चला गया तब उसके बाद तीनों लोकों का उपकार करने के लिए भगवान् हरि ने देवकी में प्रवेश किया और योगनिद्रा ने यशोदा के यहाँ प्रवेश किया। जन्म में तो एक दिन का फर्क है अष्टमी और नवमी का। जिस दिन भगवान् ने देवकी के गर्भ में प्रवेश किया उसी दिन योगनिद्रा ने यशोदा के गर्भ में प्रवेश किया, जैसा उनसे कहा गया था। जब भगवान् विष्णु का अंश पृथ्वी के ऊपर आया तब सारी ऋतुएँ शुभ हो गईं। जब भगवान् आयेंगे तब जितनी चीजें हैं वे सब उनके अनुकूल होनी ही हैं। देवकी का तेज इतना ज्यादा था कि उसको देखकर कारागार के जितने भी लोग थे वे सब क्षुब्ध हो जाते थे, उस तेज को सहन नहीं कर पाते थे। जिस प्रकार चन्द्रमा को देख करके कुमुदिनी का फूल खिल जाता है उसी तरह से सारी दिशाएँ अच्छी तरह से शोभित हो गईं।

‘सन्तः सन्तोषमधिकं प्रशमं चण्डमारुताः।

प्रसादं निम्नगा याता जायमाने जनार्दने॥’ (५.३.४)

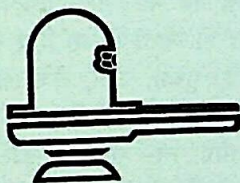
जब जनार्दन पैदा होने वाले थे तब जो सत्पुरुष थे उनके हृदय में अत्यधिक सन्तोष का प्रादुर्भाव हुआ। ये भगवान् के आने के लक्षण थे। जब तुम्हारे हृदय में सन्तोष बढ़े तब समझो कि भगवान् का प्रादुर्भाव होने वाला है और यदि असन्तोष बढ़े तो समझ लो कि भगवान् का प्रादुर्भाव अभी होने का समय नहीं आया। इसी प्रकार से जितनी नदियाँ थीं वे भी सब बिल्कुल साफ हो गईं। भाद्रपद के महिने में प्रायः नदियाँ मिट्टी से भरी होती हैं लेकिन भगवान् के आने के समय वे सब बिल्कुल साफ हो गईं और अपने शब्द से मनोहर बाजा जैसा बजाने लग गईं। गन्धर्व अप्सरा नृत्य करने लगे। देवता लोग अन्तरिक्ष में जाकर फूल बरसाने लगे और जो आग जल रही थीं वे शान्त हो गईं।

‘मन्दं जगर्जुर्जलदाः पुष्पवृष्टिमुषो द्विजः।

अर्द्धरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने॥’ (५.३.७)

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

आधी रात को, बारह बजे, जब सारे संसार के आधार भगवान् जनार्दन पैदा होने वाले हुए तब बादल ऐसा पानी बरसाने लगे, छींटे बरसाने लगे मानो फूल बरसा रहे हों। भगवान् पहले अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए फिर वसुदेव के कहने पर बालरूप में आ गये। देवकी ने भी उनकी स्तुति की। तदनंतर वसुदेव भगवान् को लेकर गोकुल की तरफ चल दिये। इस प्रकार आज का दिन अत्यंत शुभ है, इस दिन भगवान् की आराधना कर सभी कल्याण के भागी बनें।



महाशिवरात्रि

ऋग्वेद के अन्दर मंत्र आया है -

‘संवेशिनीं संयमिनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम् ।

प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रिं भद्रे पारमशीमहि ॥’

‘मैं शिवरात्रि की शरण लेता हूँ। हे शिवरात्रि! इस संसार के कारण को मैं प्राप्त कर लूँ।’ शिवरात्रि शब्द का क्या अर्थ है। शिव शब्द का मतलब अथर्व वेद की माण्डूक्योपनिषद् में बतलाया कि जहाँ सारा संसार शान्त हो जाता है वह शिव है। सारा संसार पंच महाभूतों से ही बना है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंच तत्त्वों से ही बाह्य जगत् भी बना है और इस बाह्य जगत् को जानने वाली हमारी इन्द्रियाँ और मन- ये भी इन्हीं पंच तत्त्वों से बने हैं। जिस भूत को हम जानते हैं उसी से बनी इन्द्रियद्वारा जानते हैं, जैसे आँख में तेज तत्त्व है, अग्नि तत्त्व है, अतः तेज से बने हुए रूप को आँख ही जानती है। आकाश से शब्द बना है तो आकाश से बना हुआ ही कान शब्द को जानता है। इसी प्रकार रस से जीभ बनी है अतः रस को अर्थात् स्वाद को जानने के लिए हमारी जीभ ही काम करती है। जो जिस तत्त्व से बना है वह उसी तत्त्व से जाना जाता है और उसी तत्त्व को वह जानता है। चूँकि मन रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श पाँचों को जानता है अतः मन पाँचों महाभूतों से बना है। जानने वाले हमारे औजार और जिनको हम जानते हैं- वस ये दो ही तो सृष्टि हैं। जानने वाला और जो जाना जाता है वस, इन दो के अन्दर सारी सृष्टि आ जाती है। यह सारा इन्हीं पंच-महाभूतों का विस्तार है। अतः पंच महाभूतों का विस्तार जहाँ उपशान्त हो जाता है वहाँ यह सारा जगत् भी उपशान्त हो जाता है। केवल ‘प्रपंच का उपशम’ कहने से लगता है मानो प्रपंच नहीं रहेगा, अभाव का बोध होता है मानो वहाँ कुछ नहीं है। गहरी नींद में हम लोगों को लगता है वहाँ कुछ नहीं है। गहरी नींद में तुमने क्या जाना? कहोगे

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

कुछ भी नहीं जाना। परन्तु विचित्र बात क्या है? तुम थके हुए सोने गये और ताजे होकर उठे। चिन्ता में मग्न होकर गये और निश्चिन्त होकर उठे। प्रश्न होता है कि यह ताजगी कहाँ से आई?

आजकल एक बैटरी आती है उसको विजली में लगा दो तो वह चार्ज हो जाती है उसमें विजली भर जाती है। जला दो तो जलती रहती है, भरी हुई विजली खर्च होती रहती है। मान लो कोई ऐसी टार्च बिल्कुल कमजोर हो गयी, रोशनी बिल्कुल कम हो गयी, कई दिन से चार्ज नहीं हुई है, तुम शाम को घर आये, विजली गई, तुमने उसको जलाया और वह पूरी रोशनी देती है। तुमने उसको विजली भरते हुए भी नहीं देखा और तुमने भरा भी नहीं परन्तु तुमको पता लग गया कि विजली के साथ इसको किसी ने मिलाया था जिससे यह भर कर तेज हो गई है। इसी प्रकार से तुम थक गये थे, चिन्ता से त्रस्त थे; तुम सोकर उठते हो और देखते हो कि तुम पहले जैसे ही तरोताजा हो, निश्चिन्त हो। तुरन्त प्रश्न होता है कि यह कैसे हो गया? तुम्हारा सम्बन्ध किसी तरह से परम तत्त्व से हो गया था जिसका यह प्रभाव है, यद्यपि तुम्हें मालूम नहीं। इस बात तो अतिधन्य वेद स्पष्ट कहता है—‘सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति’ उस समय सत् ब्रह्म के साथ एक हो जाते हो इसलिए फिर से तुम्हारा जो पांचभौतिक जानने वाला औजार है यह विशेष ताकत से भर जाता है। ताजगी से पता लगता है उस समय तुम परमात्मा से सम्बद्ध थे, यद्यपि तुम कहते हो ‘मैं कुछ नहीं जानता था।’ तुम उस सच्चिदानन्द परमात्मा के साथ सम्बद्ध हुए थे इसलिए तुम्हारे में ताजगी तो आ गई परन्तु बिना जाने गये थे अतः परमात्मा से सम्बन्धित होने का फल जो होना चाहिए जन्म-मरण से मोक्ष उसकी प्राप्ति नहीं हुई। अतः जैसे गहरी नींद में बहुत-से लोग समझते हैं कि वहाँ कुछ नहीं है वैसे ही यदि वेद कह देता ‘प्रपंचोपशमम्’ तो लगता वहाँ कुछ नहीं है। बहुत-से ऐसे लोग हुए वे कहते हैं कि ब्रह्म में तो कोई रस ही नहीं है! स्वयं वेद तो कहता है कि ‘रसो वै सः’ वह परमात्मा रसरूप है परन्तु कुछ लोग कहते हैं कि जब वहाँ रूप,

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श ये सब नहीं तो फिर वहाँ कुछ नहीं। परन्तु वस्तुतः वहाँ पर आनन्दधन, पूर्ण आनन्द की स्थिति है। ठीक जैसे गहरी नींद में जहाँ तुम कहते हो कुछ नहीं जानते वहाँ तुम परमात्मा से सम्बद्ध हो। उसी प्रकार से जहाँ तुम समझते हो कुछ भी नहीं है, प्रपंच का उपशम है वहाँ पूर्णता है। इसलिए कहा 'शान्तम्', वह शान्त है अर्थात् अभावरूप नहीं है। जैसे यदि कहते हैं 'यह आदमी शान्त बैठा हुआ है' तो इसका मतलब यह नहीं है कि वह बैठा हुआ नहीं है! आदमी शान्त कब बैठता है? बढ़िया लड्डू खा लिये, पेट पूरी तरह से भरा हुआ है और कोई भी चिन्ता है नहीं, तब मनुष्य शान्त एवं प्रसन्न होकर बैठता है। शान्त बैठा है- इसका मतलब होता है तृप्त है, जो इसको चाहिए वह इस समय मिला हुआ है आगे-पीछे चाहे अशान्ति रही हो लेकिन उस समय बिल्कुल शान्त बैठा है उसकी और कोई इच्छा नहीं है। इच्छा रहती है तभी अशान्ति आती है। शान्त के द्वारा यह बतलाया कि प्रपंच का उपशम है परन्तु अतितृप्त है आनन्द भरा हुआ है। वह शिवरूप है।

शिव शब्द को संस्कृत भाषा में वशि धातु से बनाया है। जैसे हिंसि धातु से वर्ण व्यत्यय होकर सिंह शब्द बन जाता है, जो हिंसा करता है उसको सिंह कहते हैं, इसी प्रकार जो अत्यन्त कमनीय होता है, अत्यन्त सुन्दर होता है उसको शिव कहते हैं। वश् धातु कांति, इच्छा को कहता है। वशि का यदि तुम वर्ण व्यत्यय कर देते हो तो शिव हो जाता है अर्थात् अत्यन्त कमनीय, अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त आकर्षक। कौन-सी चीज अत्यन्त आकर्षक है, खींचती है? जिससे सुख हो। जिससे दुःख हो वह तुम्हारे मन को कभी नहीं खींचेगा। अत्यन्त प्रिय पत्नी होवे पर वह सबेरे शाम जली रोटी और जली दाल खिलाती रहे तो कब तक वह तुम्हारी प्रिय पत्नी रहेगी? इसलिए सुख अर्थात् आनन्द ही ऐसा है जो सबको हमेशा कमनीय लगता है। शिव का मतलब है अत्यन्त कान्त, अत्यन्त कमनीय अर्थात् स्वयं आनन्द। बाकी सब चीजें तो आनन्द के लिए चाहिए। कोई भी चीज क्यों अच्छी लगती है? कहोगे, 'इससे मजा आता है, इसमें आनन्द

होता है, सुख होता है।' आगे यदि पूछें 'सुख को क्यों चाहते हो?' रसगुल्ला इसलिए अच्छा लगता है कि खाकर सुख होता है। रसगुल्ले को सुख के लिए चाहते हो, आगे सुख को किसके लिए चाहते हो? क्या जवाब दोगे? सुख को तो खुद उसके लिए ही चाहते हैं, उसको और किसी चीज के लिए नहीं चाहते, अतः वही सबसे ज्यादा हमारी इच्छा का विषय है। जैसे तुम समुद्र में चुल्लू भर पानी हाथ से उठाकर छलकाओ तो छलककर जहाँ जायेगा वह भी समुद्र का पानी ही है। वैसे शिव इस सारी सृष्टि को प्रकट करते हैं परन्तु ऐसा होने पर भी उनकी शिवस्वरूपता घटती नहीं है। अतः वह शिवतत्त्व हमेशा अद्वितीय ही है अद्वैत ही है। प्रपंच का उपशम कहने से ऐसी प्रतीति होती है मानो द्वैत है, कोई प्रपंच है जो वहाँ नहीं रहता है। अद्वैत कह कर बतला दिया कि ऐसी प्रतीति केवल अज्ञान के कारण है वस्तुतः तो हमेशा एक ही तत्त्व है।

एक महात्मा गणेश जी के भक्त थे। उनके पास गणेश जी की सोने की मूर्ति थी। बड़े नियम से पूजा करते थे। धीरे-धीरे बहुत बुड्ढे हो गये। सोचने लगे- 'अरे! जब यह शरीर छूट जायेगा तो मूर्ति का क्या होगा?' कुम्भ का पर्व आ रहा था, उन्होंने सोचा 'इसको बेचकर महात्माओं का भण्डारा कर दूँ, महात्माओं के पेट में चला जायेगा। यह सब धन जहाँ जाना चाहिए वहाँ चला जायेगा।' सुनार के पास गये, सुनार ने गणेश जी और चूहे दोनों को तोला, दोनों का तोल एक ही था। उसने दोनों का भाव लगा कर कह दिया कि इतने रुपये के गणेश जी हो गये और इतने का चूहा। महात्मा को बड़ा गुस्सा आ गया 'अरे! तू कैसा नास्तिक है, गणेशजी और चूहे का एक भाव कर रहा है।' सुनार ने कहा 'स्वामीजी! मैं न गणेशजी को खरीद सकता हूँ न चूहे को खरीद सकता हूँ। मैं तो केवल सोने को खरीद सकता हूँ, सोना दोनों में एक जैसा है इतना ही हमारा मतलब है। गणेशजी और चूहे को मैं नहीं खरीद रहा हूँ।' स्वामीजी समझ गये कि यह बात ठीक कह रहा है। इसी प्रकार से शिवतत्त्व से यह सारी सृष्टि बनी। अलग-अलग रूपों को देखकर भ्रम होता है मानो

ये अलग चीजें होंगी लेकिन उनकी असलियत देखोगे तो एक ही निकलेगी इसलिए कहा 'अद्वैतम्'।

ऐसा यह शिवतत्त्व स्वरूप से तो निष्कल है, किसी भी प्रकार से इसमें टुकड़े नहीं हैं अवयव नहीं हैं, परन्तु निष्कल तत्त्व हम लोगों की समझ में आ नहीं सकता इसलिए अतिधन्य वेद ने हमें उसे समझने के लिए आधार दिया। शिवलिंग वही आधार है। शिवलिंग का प्राकट्य ब्रह्मा और विष्णु के गुलत अभिमान को हटाने के लिए हुआ था, एक ज्योतिर्लिंग प्रकाश के खंभे की तरह प्रकट हुआ था। इस सृष्टि के अन्दर ज्ञान सब चीजों का हो जाता है। सारी प्रवृत्तियों का कारण इच्छा है और प्रवृत्ति क्रिया है। क्रम है 'जानाति इच्छति यतते', तुम किसी चीज को जानते हो तब उसकी इच्छा करते हो और जब उसको चाहते हो तब उसके लिए क्रिया करते हो कि वह हमें मिले। मिले का मतलब हटे भी समझ लेना। बड़े जोर का बुखार आ गया, सिर फट रहा है, वेदना हो रही है, यह ज्ञान है। इस ज्ञान के कारण इच्छा होती है कि बुखार हटे। तब तुम डाक्टर साहिब के सामने पहुँचते हो कि कोई दवाई मिले। डाक्टर तुम्हें कोई दवाई दे देते हैं और बुखार हट जाता है। अतः चाहे किसी चीज के मिलने की इच्छा हो, चाहे किसी चीज के हट जाने की इच्छा हो, इच्छा होगी तभी क्रिया होगी और इच्छा तभी होगी जब तुम्हें ज्ञान होगा। कई बार ऐसा अनुभव होता है— सैर करके आये, कोई कहता है आपके कपड़ों पर खून लगा हुआ है क्या बात है? धोती को देखते हो, खून से भरी हुई है। रास्ते में कहीं कोई काँटा लगा अथवा कोई कीड़ा काट गया, लेकिन तुम घूमने में इतने व्यस्त थे कि तुमको पता नहीं चला। ज्ञान नहीं था इसलिए तुम्हारे मन में इच्छा भी नहीं हुई अन्यथा डाक्टर साहिब के क्लीनिक के सामने से निकले थे, दिखा लेते, परन्तु ज्ञान नहीं था इसलिए इच्छा नहीं हुई। इच्छा नहीं हुई तो फिर तुमने कुछ किया भी नहीं। ज्ञान हुआ तो तुरन्त कहते हो 'अरे! खून काफी निकल गया, गाड़ी निकालो और डाक्टर साहिब के पास चलो।' ज्ञान आधार है, उससे इच्छा होती है, इच्छा से प्रवृत्ति, क्रिया

होती है। इस संसार का आधार जो ज्ञान है वह तो अधिष्ठान और शिवस्वरूप है, इच्छारूप भगवान् विष्णु हैं और क्रियारूप ब्रह्मा हैं। यदि ब्रह्मा की मूर्ति देखोगे तो उनके हाथ में सुवा, माला आदि क्रिया के साधन हैं। वैदिक कर्मकाण्ड में ब्रह्मा की, ब्रह्मा-पद पर आसीन ऋत्विक् की उपस्थिति आवश्यक होती है, कोई ब्रह्मा न मिले तो एक कुल्हड़ या लोटे में चावल भरकर उसके ऊपर कपड़ा रख कर ब्रह्मा की स्थापना कर देते हैं! क्रिया में, कर्म में ब्रह्मा की प्रधानता रहती है। सारी सृष्टि ब्रह्मा जी ने बनाई, क्योंकि सारी सृष्टि क्रिया से ही बनती है। तुम्हारे कर्मों का फल देने के लिए ही तो सृष्टि की विचित्रता है। अलग-अलग दण्ड की सृष्टि क्यों? तुम्हारे कर्मों का भेद है इसलिए। तुम्हारी जो इच्छा है, वही समष्टि भगवान् विष्णु हैं। इसलिए अधिकतर हमारी इच्छा को शुद्ध करने वाले जितने भी उपासना काण्ड के प्रयत्न हैं, भक्ति है उनके अन्दर विष्णु की ही प्रधानता रहती है। इन तीनों का जो आधार ज्ञान है वह शिवस्वरूप है। क्योंकि ज्ञान होने पर यह सारा प्रपंच शान्त हो जाता है इसलिए भगवान् शंकर को कहा जाता है कि वे सब चीजों को खत्म कर देते हैं। ज्ञानरूप उन्हीं से सब कुछ पैदा हुआ, स्थितिकाल में भी बिना ज्ञान के कुछ नहीं, और वे ही सबको शान्त कर देते हैं। अज्ञान के रहते हुए हमें घड़ा कपड़ा इत्यादि का ज्ञान होता है, इच्छा होती है और क्रिया करते हैं अर्थात् अज्ञान के कारण सांसारिक ज्ञान-इच्छा-क्रिया वाले बने हुए हैं। जब बिना अज्ञान के हम उसको देखते हैं तब इस सारे प्रपंच को शान्त करने वाले हो जाते हैं ब्रह्मा विष्णु ने प्रकट हुए ज्योतिर्लिंग की स्तुति की कि यही मूल कारण है। यह लीला आज के दिन हुई थी इसलिए इस दिन का इतना महत्त्व है।

इस दिन के साथ एक दूसरी कथा का भी सम्बन्ध है। समुद्र-मंथन के लिए सभी देवता और असुर पहुँचे। जो-जो रत्न निकल रहे थे उन्हें वे लेते जा रहे थे। भगवान् शंकर आनन्द से बैठे हुए थे। किसी ने लक्ष्मी को ले लिया, किसी ने कौस्तुभ को ले लिया, किसी ने ऐरावत ले लिया, सब लोग लेते रहे। अलग-अलग कीमती

रत्न निकल रहे थे। इसके बाद समुद्र से हलाहल विष निकला। इतना तीव्र हलाहल विष था कि सारा संसार मानो इससे जल जायेगा। देवता और असुर सब घबराये कि 'अरे! हम लोग चाहते थे अमर हो जायें और यह तो अभी ही मरने का काल आ गया। क्या करें? एक दूसरे से लड़ने लगे। पहले इन्द्र से कहा 'आप राजा हैं विष का कुछ इन्तजाम करें।' इन्द्र ने कहा 'मैं कुछ नहीं कर सकता मैं तो खुद ही जल जाऊँगा।' विष्णु भगवान् के पास गये तो उन्होंने भी कहा कि 'यह सब काम हमारे करने का नहीं है। इसको करने वाले तो वे बैठे हुए हैं', भगवान् शंकर की तरफ दिखा दिया। अब सब लोग भगवान् शंकर के पास पहुँचे, जाकर बोले कि 'महाराज! जो रत्न निकले थे वे तो हमने ले लिये और अब यह विष आप लीजिए क्योंकि आपने अभी तक कुछ नहीं लिया। हम लोग इसकी अग्नि से तप रहे हैं आपके सिवाय कोई इसको शान्त नहीं कर सकता।' भगवान् शंकर ने कहा कि 'लाओ दे दो।' जैसे ही वे जहर लेने लगे, पार्वतीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया कि 'खबरदार! मत लेना। ये देवता और असुर तो अपना काम बनाना चाह रहे हैं पर मेरे तो आप ही धन हैं, इसलिए मैं आपको पीने नहीं दूँगी।' पत्नी का पति के ऊपर पूरा अधिकार है। विष्णु भगवान् ने विचार किया कि 'ये तो सारा काम बिगाड़ देंगी।' उन्होंने कहा कि 'महाराज इसकी बात मत सुनो, आप जल्दी पी लो।' भगवान् शंकर को विष्णु भगवान् अत्यन्त प्रिय हैं हरिप्रिय उनका एक नाम ही है। दूसरी तरफ पार्वती भी उनको अत्यन्त प्रिय हैं। अब किसकी बात मानें किसकी बात न मानें? भगवान् शंकर ने दोनों को खुश किया। पार्वती कह रही थी कि 'मत पीना' तो भगवान् शंकर ने विष को पिया नहीं। विष्णु कह रहे थे 'पी लो', इसलिए मुँह में ले लिया किंतु लेकर कंठ में रोक लिया! पीने का मतलब है कंठ से नीचे उतारना, कंठ से नीचे उतारा नहीं और कंठ तक उतार भी लिया; इसलिए उसको ले भी लिया, ग्रहण भी कर लिया और पिया भी नहीं।

यह सारा जो हमारा संसार है इसी में से अमृत निकालने के

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

लिए, निरन्तर देवासुर लगे हुए हैं। इसी में वे अमरता को चाहते हैं। अतिधन्य वेद कहता है - 'अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन' अपनी अत्यन्त प्रिय पत्नी मैत्रेयी को समझाते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं कि धन से कभी भी तुमको अमृतत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। हम लोग चाहते तो हैं अमृतत्व को परन्तु पाना चाहते हैं इसको वच्चों के द्वारा या धन के द्वारा। उसमें तो सिवाय जलने वाली हलाहल ज्वाला के और कुछ मिलने वाला नहीं है! आज के सृष्टि प्रपंच में सब व्यस्त हैं कि हम कैसे अधिक से अधिक पदार्थों को अपने पास बटोर लेवें। जितना सामान बढ़ रहा है उतने ही लोग दुःखी दीखते हैं। पहले किसी से पूछते थे 'कैसे हो?' - सौ में से पिच्यानब्ये का जवाब होता था 'महाराज, आपकी कृपा से सब कुशल मंगल हैं।' आज पूछते हैं 'कैसे हो?' तो कहते हैं 'महाराज, बहुत दुःखी हैं।' कई इनकम-टेक्स की रेड से दुःखी हैं, कई सेल-टेक्स की रेड से दुःखी हैं। कभी चीजों की कमी से दुःखी हैं, कभी चीजें ज्यादा हो गईं इसलिए दुःखी हैं! दिल्ली में आजकल चीन वालों ने बहुत सस्ता माल बेचना शुरू कर दिया है। व्यापारी उसी से दुःखी हैं! जो कहता है 'हम दुःखी हैं' उसके पास पच्चीस साड़ियाँ हैं, वारह सूट हैं, चार जोड़ी जूते हैं फिर भी कहता है कि दुःखी है। पहले जिसके पास दो जोड़ी कपड़े होते थे वह सुखी होता था! इसलिए कहा- 'अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति' अमृत की प्राप्ति धन से नहीं हो सकती, इससे तो हलाहल की प्राप्ति होगी। इस हलाहल को पीने में कौन समर्थ है? भगवान् शंकर ही इसको पी सकते हैं। अगर संसार की ज्वाला से वचना चाहते हो तो भगवान् शंकर की शरण लेनी पड़ती है।

यह जो शिवरात्रि का व्रत है यह सारे पापों को मिटाने वाला है जैसे उन्होंने हलाहल पिया था वैसे ही तुम्हारे सारे पापों को वे खुद अपने में धारण कर लेते हैं। हलाहल उन्होंने एकादशी के दिन पिया था। हलाहल विष इतना तीव्र था कि जैसे ही उन्होंने उसे कंठ में धारण किया, तुरन्त वे बेहोश हो गये। उनकी बेहोशी को देखकर देवता आदि सब दुःखी हुए और प्रार्थना करने लगे 'भगवन्! आप

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

होश में आइये।' तीन दिन की बेहोशी के बाद आज के दिन यानी शिवरात्रि के दिन वे होश में आये। देवता सब बड़े प्रसन्न हो गये। प्रसन्न होकर उन्होंने निरन्तर रात्रिभर पूजन किया। आज के दिन ज्योतिर्लिंग प्रकट भी हुआ था और आज के ही दिन देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर रात्रिभर पूजन भी किया, अभिषेक भी किया था। शिवरात्रि के व्रत में तीन अंग हैं, जिनके होने पर इसकी पूर्णता होती है। एक है उपवास, दूसरा है जागरण और तीसरा है पूजन। तीन चीजों से शिवरात्रि का व्रत पूरा होता है। पहली चीज है कुछ भी न खाना। शिवरात्री के व्रत में उत्तम पक्ष है कुछ भी न खाओ, यदि न रहा जाय तो फलाहार कर लो। प्रतिदिन का जो अन्न है वह तो मत ही खाओ। कुछ मत खाओ का मतलब यह न समझ लेना कि आँख से बाईस्कोप देखो, कान से दूसरों की निन्दा सुनो, मुख से दूसरों की चुगली करो और कहो कि तुमने कुछ नहीं खाया! खाने का विचार करते हुए आचार्य शंकर ने कहा है कि आँख रूप को खाती है, कान शब्द को खाते हैं, नासिका गन्ध को खाती है। केवल जो तुम मुँह से खाते हो वही अन्न नहीं है। सर्वथा किसी चीज को हम अन्दर न ले जायें, ग्रहण न करें, यह शिवरात्री का व्रत हुआ। यह स्थिति निर्विकल्प समाधि में बनती है। कुछ नहीं खाना अगर हमारी सामर्थ्य में नहीं है तो फलाहार करें। अर्थात् हमारे कर्म का जो फल है वस उसी को हम ग्रहण करें। आगे उसके अन्दर अपनी इच्छा इत्यादि मिला करके नये कर्मों की तरफ प्रवृत्ति न करें। अगर तुमको रूप दीखता है तो आगे उस रूप को लेकर राग आदि न करो। भगवान् ने कहा है -

‘ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥५-२२॥

इन्द्रिय का किसी-न-किसी पदार्थ के साथ सम्बन्ध होता है, स्पर्श होता है, भोग के लिए स्पर्श ज़रूरी है। हम क्या करते हैं? संस्पर्श करते हैं, उस पदार्थ को ग्रहण करके उसको अपने अन्दर स्थिर कर लेते हैं। सुख और दुःख का भोग करते हुए राग द्वेष से

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

रहित रहें, तब स्पर्श नहीं होगा। यह जो संस्पर्श है, पदार्थों के साथ जो राग-द्वेष है वह ही हमारे दुःख का कारण है। इससे बचने का उपाय है कि हम उनमें रम न जायें। कैसे? भगवान् ने बड़ा सीधा उपाय बताया- जो चीज आई है वह अवश्य जायेगी अतः उसकी इच्छा करना व्यर्थ है। इस प्रकार से केवल फल-मात्र का आहार करें। इसको अपने जीवन में थोड़ा भी अपनाने लगे तो देखोगे शान्ति आने लगेगी। पहले लोगों में शान्ति इसीलिए थी। पहले जब किसी धनी को देखते थे तो मन में यह विचार उठता था कि 'इसने पूर्व में पुण्य किये हैं' तब यह धनी है। हमने उतने पुण्य नहीं किये हैं हमारा इतना ही पुण्य है।' अब यह लगता है कि 'यह पापी है, अरे! इसने तो लोगों को लूटा होगा तब इसके पास है' इसका अगला कदम होता है 'मैंने लूटा नहीं इसलिए नहीं है', अतः लूटना शुरू करो। यही आज का सिद्धान्त है। दूसरों ने लूटा है, तुम लूटना शुरू करो। जिसको लूटोगे वह लूटने देगा नहीं तो संघर्ष शुरू हो जायेगा। इसलिए पहला अंग है कि सर्वथा आहार का त्याग करो, वह न कर सको तो जो अपने कर्मफल से मिलता है उसके अन्दर सर्वथा सन्तुष्ट रहो। उससे अधिक राग करके प्रवृत्ति मत करो। व्रत का दूसरा अंग है रात्री में जागरण। भगवान् ने गीता में इसको भी बतलाया -

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥२-६१॥

भगवान् ने कहा कि जो लोगों के लिए रात की तरह है वह विवेकी के लिए दिन की तरह है। साधारण जो लौकिक लोग हैं उनके लिए शिव तत्त्व रात की तरह है। उनको लगता है कि परमेश्वर परमात्मा यह सब पता नहीं क्या है, हमारी समझ में नहीं आता। उनको लगता है कि यह परमात्म तत्त्व तो सर्वथा रात की तरह है। रात में कुछ नहीं दीखता। इसी प्रकार जब कोई इस परमात्म तत्त्व के बारे में बात कहता है तो लगता है कि 'इसे पता नहीं होगा, अपनी मनगढन्त बातें बोल रहा है' रात्री में जिस प्रकार कुछ प्रतीति नहीं होती उसी प्रकार परमात्म विचार में उनको कुछ प्रतीति नहीं

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

होती। परन्तु जो संयमी है उसको वह दीख रहा है जैसे यह संसार सब प्राणियों को स्पष्ट दीख रहा है। जो मनन करने वाला है उसको संसार में सार दीखता नहीं है अर्थात् कुछ समझ में नहीं आता। वह कहता है- आज हजारों सालों से लोग औषधि विज्ञान में लगे हुए हैं लेकिन क्या शरीर के पाँच प्रतिशत भाग को भी ठीक तरह से जान पाये हैं? एक प्रसिद्धि है: एक आदमी डाक्टर के पास गया, उसका पेट खराब था। डाक्टर ने सब बातें समझ कर पूछा कि 'तुम रात में खाते तो नहीं हो?' उसने कहा कि 'रात में तो खाता हूँ।' डाक्टर बोला 'बस इसीलिए पेट में गड़बड़ी है। शाम को खा लिया करो, रात को कुछ मत खाया करो।' बेचारे ने छह महीने तक वैसे ही किया। फिर आया, कहने लगा 'डाक्टर साहब, हमें तो कुछ फर्क ही नहीं हो रहा है। पेट में वही तकलीफ है।' छह महीने बाद डाक्टर को कहाँ याद रहता! उन्होंने कहा कि 'तुम रात में खाते नहीं होगे इसीलिए तुम्हारी बीमारी ठीक नहीं हो रही है, रात में थोड़ा-थोड़ा खाया करो।' उसने कहा कि 'डाक्टर साहब आपने ही कहा था कि रात्री में खाना मत खाया करो इसलिए नहीं खाता हूँ।' डाक्टर ने कहा कि 'छह महीने में विज्ञान कितनी तरक्की कर गया!' जितना हम ढूँढते जायें हमें पता लगता नहीं इसलिए जो मननशील है, मुनि है वह जब लोगों की निश्चितता को देखता है कि लोग प्रत्येक चीज के बारे में कितने निश्चित हैं कि बिल्कुल ठीक ऐसा ही है, तो उसकी समझ में नहीं आता कि ये लोग कैसे निश्चित हो जाते हैं? इसलिए रात्री में जागरण का मतलब है सारा संसार जिस शिवतत्त्व के बारे में सो रहा है, उस शिवतत्त्व के अन्दर जगे रहना है। जागने का मतलब है केवल शिवतत्त्व में जागना, दूसरी चीजों को देखते हुए जागना नहीं है।

तीसरा अंग है पूजन। आज के दिन भगवान् शंकर के पूजन की विलक्षणता बतलाते हुए स्कन्द पुराण की कथा है: एक भील था। जंगल में उसने आज के दिन आखेट करते हुए चेष्टा की कि कुछ खाने को मिल जाय। भील था, पशु इत्यादि खाता था। कहीं कुछ नहीं मिला।

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

ढूँढते-ढूँढते रात हो गई। उसने सोचा कि वापसी रास्ता कठिन है, जंगली जानवर आक्रमण कर देंगे, इसलिए एक पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ के ऊपर चढ़ कर शान्ति से बैठा था। रात में प्यास बुझाने के लिये पीने के लिए तालाब से उसने पत्ते के दो दोनों में पानी ले लिया था। थोड़ी देर में उसने देखा कि वहाँ एक हरिणी पानी पीने आयी। भील ने सोचा, 'बड़ा अच्छा हुआ, मेरा शिकार आ गया।' उसने झट से उसको मारने के लिए अपना धनुष-बाण तैयार किया। खड़-खड़ की आवाज हुई। वह जिसके ऊपर बैठा था वह विल्व वृक्ष था। धनुष इत्यादि के उठाने से कुछ वेल के पत्ते पेड़ हिलने से टूट कर गिर गये। उसके दोने में जो पानी था उसमें से थोड़ा छलक गया। उस विल्व वृक्ष के नीचे भगवान् शंकर का शिवलिंग था। पत्ता भी भगवान् शंकर के ऊपर गिर गया और पानी भी गिर गया! खड़-खड़ की आवाज सुनकर हरिणी के कान सीधे हो गये और ध्यान से उसने देखा। उसने कहा 'अरे! तू क्या करने जा रहा है? वह बोला 'आज दिन भर मुझे कोई शिकार नहीं मिला इसलिए तुझे मार कर अपना और अपने परिवार का पेट भरूँगा'। हरिणी ने जवाब दिया कि 'तुम मुझे मार कर खाना चाहते हो और अपने बच्चों को खिलाना चाहते हो, यह अच्छी बात है क्योंकि शरीर को तो एक दिन जाना ही है, किसी के काम आ जाये तो बहुत अच्छा। मेरे बच्चे अभी छोटे हैं, उन्हें मैं अपनी वहिन के सुपुर्द कर वापिस आ जाऊँगी।' भील ने कहा 'कहती तो है परन्तु तू वापिस नहीं आयेगी।' हरिणी ने कई शपथें खायीं कि 'अगर मैं वापिस न आऊँ तो ऐसे-ऐसे कर्म करने वालों को जिस दण्ड की प्राप्ति होती है वह मुझे प्राप्त हो।' विल्व-पत्र और जल तो भगवान् शंकर को चढ़ ही गया था। भील को तो पता नहीं था पर उसके फलस्वरूप उसका मन शुद्ध हो गया था, अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, अतः उसको हरिणी की बात समझ में आ गई। अगर मन शुद्ध न होवे तो आये हुए शिकार को कौन छोड़े! उसने कहा 'जाओ फिर वापिस आ जाना।' हरिणी चली गई और काफी देर हो गई पर वापिस तो आई नहीं।

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

भील ने देखा कि दूसरी हरिणी आई है। वह झट से उसे बाण मारने के लिए तैयार हो गया। फिर वैसा ही हुआ, खड़-खड़ हुई, पत्ता गिरा, पानी गिरा नीचे भगवान् शंकर का लिंग था। दूसरी ओर से हरिणी ने भी उसको देखा और उसने भी उसको वही कहा कि 'तुझे मार कर घरवालों को खिला दूँगा।' उसने कहा कि 'मुझे खिलाओगे तो बड़ी अच्छी बात है परन्तु मैं ज़रा अपनी वहिन एवं वहनोई से मिल आऊँ और फिर वापिस आ जाऊँगी।' भील ने कहा कि 'तू वापिस नहीं आयेगी।' उसने भी कई कसमें खाई कि 'मैं जरूर आ जाऊँगी।' शिव-पूजा से उसका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो गया था इसलिए उसने छोड़ दिया। थोड़ी देर में भील ने देखा कि एक बड़ा हृष्ट-पुष्ट हिरण आया। बड़ा खुश हो गया कि 'वे हरिणियाँ तो दुबली पतली थीं इस एक से ही काम पूरा हो जायेगा।' पुनः वैसा ही हुआ और हिरण ने पूछा; तीसरी बार भी वही वेल पत्र भी गिर गये और जल भी गिर गया। हिरण ने कहा कि 'मैं जाकर अपनी घरवाली और वच्चों को देख कर आ जाता हूँ।' भील ने कहा 'यह अच्छा है! जो आता है वह जाता है, तू भी जायेगा पर वापस तो आयेगा नहीं।' उसने भी शपथें खाई कि 'मैं जरूर आऊँगा।' तीन पहर की पूजा करके उसका मन भी शुद्ध हो गया था। उसने कहा 'अच्छा, जाओ, वापस आ जाना।'

वे हिरण एक ही परिवार के थे। जब दोनों हरिणियाँ और हिरण घर पहुँचे तो सबने अपना किस्सा बताया। वे सब झगड़ा करने लगे। पहली वाली हरिणी कहे 'पहले मैं गई थी इसलिए मैं जाऊँगी, तुम वच्चों को सम्भालो।' हिरण कहे 'मेरे वच्चों को सम्भालना तुम्हारा काम है और आदमी के रहते हुए औरत को कुछ होवे यह आदमी के लिए बहुत बुरी बात है इसलिए मैं जाऊँगा।' जो बीच वाली थी वह कहती 'तुम्हारे तो वच्चे हैं, मेरे वच्चे हैं नहीं इसलिए तुम अपने वच्चों को देखो और हमें भेजो।' उस समय झगड़ा यह नहीं हो रहा था कि 'तू चली जा या तू चला जा।' झगड़ा यह हो रहा था कि 'मैं जाऊँगा।' नहीं मानने के कारण तीनों झगड़ा करते हुए

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

वहाँ पहुँचे कि 'तू मत जा, तू मत जा।' उनके वच्चों ने विचार किया कि जब 'हमारे माता-पिता, मासी सब जा रहे हैं तो हम भी क्या करेंगे!' वे भी उनके साथ हो लिये। वे सारे वहाँ पहुँचे। भील को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये सब आ गये और सब कह रहे हैं कि 'हमें मारना, उसे नहीं।' चौथी बार जब उसकी पूजा हो गई तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया वह सोचने लगा 'ये जानवर होकर जान देने के लिए तत्पर हैं, अपनी सत्यवादिता पर दृढ़ हैं और मैं मनुष्य हो कर अपने पेट के लिए इन लोगों को मार रहा हूँ।' उसने कहा 'तुम सब जाओ किसी को नहीं मारना।' जैसे ही उसने उनको छोड़ा वैसे ही भगवान् शिव लिंग से प्रकट हो गये। उन हिरणों को तो उन्होंने कहा कि तुम शिवलोक जाओ, तुम सत्य पर टिके रहे। सत्य के लिए अपने आप को बलिदान करने के लिए तैयार रहे। तुम लोग सीधे यहाँ से शिवलोक को चले जाओ।' भील से कहा 'तुमने जो इन लोगों को छोड़ा इससे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है यह पता लग ही गया, अब तुम पूर्णता प्राप्त करने के लिए कुछ समय तप करो। भगवान् राम का अवतार होगा, वे तुम्हारे क्षेत्र से निकलेंगे, उनकी सेवा कर तुम परम धाम को जाओगे।' वह भील ही निषादराज हुए। शिव-पूजा का ऐसा महत्त्व है कि बिना जाने भी जो पूजा की गई उसका भी इतना फल हुआ इसलिए जानबूझ कर जो पूजा की जाती है उसका तो कहना ही क्या!

इस व्रत के तीन खण्ड हैं। उपवास रखना, रात में जगना और पूजा करना। तीनों में से जो जितना कर सके उतना करे। जैसा उपवास के बारे में बतलाया वैसे ही बाकी चीजों के बारे में समझ लेना। शिवरात्रि का व्रत सारे पापों को नष्ट कर देगा। परमात्मा को 'अहेतु दयासिन्धु' कहा है। बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के वे दया करते हैं। कर्म शास्त्र के अन्दर हमेशा कारण और कार्य की परम्परा रहेगी यानी अमुक कर्म करोगे तो अमुक फल होगा, परन्तु परमात्मा की करुणा इस प्रकार के किसी निमित्त को नहीं मानती। कहीं दीखता है कारण से होता है, कहीं दीखता है कारण के

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

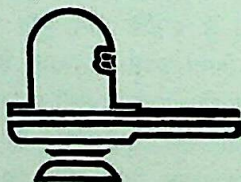
विना होता है। करुणा का स्वरूप ही ऐसा है। कर्मशास्त्री वहाँ भी किसी-न-किसी कर्म की कारणता को लायेगा ही! भील की कथा से करुणा की अकारणता को वतलाया। साधक का हृदय छलरहित और सत्यनिष्ठ हो यह आवश्यक है जैसा हरिणों का था। कल्याण भील का भी हुआ लेकिन समय पाकर क्योंकि उसमें यह भाव अभी पका नहीं था कि सत्य के लिए, अपने आदर्शों के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दे। प्रपंचोपशम का ज्ञान हो कैसे? प्रपंच में रहने वाला तो प्रपंचातीत को, प्रपंच के उपशम को वतला नहीं सकता। जैसे कुएँ में डूबा हुआ आदमी कुएँ के ऊपर क्या हो रहा है इसे वतला नहीं सकता, इसी प्रकार से प्रपंच में डूबे हुए लोग प्रपंच के उपशम को, जहाँ प्रपंच-निवृत्ति है उसको वतला नहीं सकते, और उसके ज्ञान के विना यह प्रपंच निवृत्त हो नहीं सकता। इसलिए परमात्मा का जो अत्यन्त कल्याणस्वरूप वेद है वह हमें उसका स्वरूप वतलाता है। वेद प्रपंचातीत है। वह प्रपंच में है भी और चूँकि प्रपंचातीत को वतलाता है इसलिए प्रपंच के अन्दर नहीं भी है। देखने में आता है कि किनारे पर खड़ा व्यक्ति डूबने वाले को अपना हाथ देता है। किनारे का नदी से संबन्ध है भी और नहीं भी, तभी डूबते को हाथ दे सकता है। यदि ढाल के ऊपर खड़ा हुआ है तो वह डूबने वाले को हाथ नहीं दे सकता। इसी प्रकार से वेद प्रपंच में है भी और प्रपंचातीत भी है। परमात्मा को सकल रूप से वतलाते हुए वेद इसके निष्कल रूप की तरफ संकेत कर देता है। सकल रूप से वर्णन करता है तो प्रपंचान्तर्गत है परन्तु जिस निष्कल रूप की तरफ संकेत करता है वह प्रपंच से वहिर्भूत है। वेद सकल और निष्कल दोनों की दृष्टि ले कर ही उपदेश करता है।

भगवान् शंकर का रूप वतलाते हुए कहा 'त्रयीवेद्यम्' अर्थात् वेद के द्वारा ही उसका ज्ञान होता है, उसको केवल उपनिषद् से ही जाना जाय ऐसा पुरुष वतलाया है। यद्यपि परमात्मा निष्कल है तथापि सकल रूप की आवश्यकता निष्कल रूप को समझने के लिए है। यह त्रयी वेद्य है पर कैसे? क्या मन से जाना जाता है अथवा इन्द्रियों से

जाना जाता है? काँच में तुमको मुँह कैसे दीखता है? यदि कहो आँख से दीखता है, तो आँख हमेशा सामने की चीज देखती है, पीछे की चीज नहीं। किन्तु दर्पण की सहायता से आँख जिस मुख को देखती है वह सामने नहीं होता। इसलिए यह नहीं कह सकते कि उसे आँख देखती है। यदि आँख मुँह को देखती तो वह सामने होना चाहिए जबकि है नहीं। और यदि आँख नहीं देखती है तो दीख कैसे रहा है? आँख की जगह ही वेद है। वेद परमात्मा के स्वरूप को बतलाता है। परमात्मा का वह स्वरूप हमको मन के अन्दर प्रतिबिम्बित हुआ दीखता है। इस दृष्टि से कह सकते हो मन देखता है परन्तु मन उसको सामने नहीं वरन् मन को जो जानने वाला है, उस रूप से देखता है। इसलिए यह भी नहीं कह सकते कि मन देखता है, जैसे चेहरे को आँख देखती है यह भी नहीं कह सकते क्योंकि मुँह सामने नहीं है। परमात्मा वेद के द्वारा बताया जाता है। मन के बिना उसको नहीं जान सकते परन्तु वेद उसको मन में जना देता है। जैसे चेहरा हमको दीखा उसमें हमारे पास प्रमाण आँख है। दीखा तो काँच के अन्दर, बिना काँच के नहीं दीखता, परन्तु फिर भी देखने वाली तो आँख है, प्रमाण वही है। इसी प्रकार वेद के द्वारा अन्तःकरण की अहमात्मिका वृत्ति के अन्दर वह दीखा। बिना अहमात्मिका वृत्ति के, बिना मन के तो नहीं दीखा परन्तु इस वृत्ति में दीखने वाला वह है। इसीलिए शास्त्रों में अनेक स्थलों में इसको वेद्य भी कहा है अवेद्य भी कहा है।

वह परमात्मा कैसा है? शिव का स्वरूप बतलाते हुए उसको अत्यन्त कमनीय कहा था। हृदय को अत्यन्त प्रसन्न करने वाला कहा था। हृदय में ही उसकी उपलब्धि होती है। परमात्मा का ध्यान सर्वत्र किया जा सकता है क्योंकि सब कुछ परमात्मस्वरूप है। फिर भी हृदय के अन्दर किया हुआ जो ध्यान है वह साक्षात् सहायक होता है। जो चीज हृदय में जमती है उसी को हृद्य कह देते हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण- हमारे जो तीन शरीर हैं उनमें हम रहते हैं। जाग्रत् अवस्था के अन्दर स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीर कार्य करते

हैं। स्वप्नावस्था के अन्दर केवल सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर कार्य करते हैं और सुषुप्ति अवस्था के अन्दर केवल कारण शरीर ही कार्य करता है। इन तीन अवस्थाओं में घूमने वाले हम वस्तुतः इन तीन अवस्थाओं वाले नहीं हैं परन्तु हम अपने को तीन अवस्थाओं वाला ही मान रहे हैं। त्रिपुरों का हरण करके हमारा निष्कलस्वरूप प्रकट हो जाता है। शिवतत्त्व वेद के द्वारा ही हृदय के अन्दर ध्यान करके ही वेद्य है और ज्ञात होने पर तीन पुरों को नष्ट कर देता है जिससे जीव स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों से रहित हो जाता है। शिव का वास्तविक स्वरूप निष्कल है पर जब तक हम अज्ञान में हैं तब तक हम उसके सकल रूप को देखते हैं। जब हम इस सकल रूप को देखते हैं तभी हम उसके निष्कल रूप को देख पाते हैं अन्यथा यह सारा संसार है तो परमात्मस्वरूप परन्तु हम उसको परमात्मरूप देखते नहीं। यह सकल रूप भी वास्तविक नहीं। अभी हमें संसार परमात्मा से अलग दीख रहा है इसीलिए सारा भेद हमारे सामने है। उसकी जगह यह देखना है कि यह सब परमात्मरूप है। जब यह सब परमात्मरूप समझेंगे तब पता लगेगा कि यह रूप तो अज्ञानकल्पित है, वस्तुतः वह निष्कल है। परमेश्वर सकलरूप और निष्कलरूप दोनों है। सकलरूप के द्वारा हम उसको समझ पाते हैं परन्तु जिसको समझ पाते हैं वह निष्कलरूप है, यही इस सकलरूप की विशेषता है। आज आप लोगों ने महाशिवरात्रि व्रत किया जिसे सारे पापों को नष्ट करने वाला बतलाया है। जिस प्रकार से देवता और असुरों के द्वारा उत्पन्न हलाहल को उन्होंने दया करके पीकर उनकी रक्षा की, इसी प्रकार हमारे सारे पापों को नष्ट करके वे हमारी रक्षा करें, यही भगवान् शंकर से प्रार्थना है।



महाशिवरात्रि

५५



श्रीगणेश चतुर्थी

आज गणेश चतुर्थी है। भगवान् गणेशजी का वर्णन करते हुए महर्षि जैमिनि कहते हैं -

मातामहमहाशैलं महस्तदपितामहम् ।

कारणं जगतां वन्दे कण्ठादुपरि वारणम् ॥

भगवान् गणेश के नाना महाशैल हिमालय पर्वत हैं क्योंकि गणेशजी की माता पार्वती, पार्वती के पिता हिमालय पर्वत हैं। और गणेशजी स्वयं हैं - महातेजःस्वरूप। किसी ने पूछा, नाना बताया तो दादा भी बताइये? कहते हैं- 'अपितामहं' जिनके नाना तो हैं पर दादा नहीं हैं! क्योंकि पार्वती तो हिमालय पर्वत से प्रकट हुई हैं पर भगवान् शंकर तो नित्य रहते हैं, कभी प्रकट होने का प्रसंग ही नहीं आता। लोगों के सामने तो प्रकट हो जाते हैं, भक्त जब उनकी भक्ति करता है, तपस्वी जब उनके लिए तपस्या करता है तब अपने आपको उनके सामने प्रकट कर देते हैं, परन्तु रहते नित्य ही हैं जिस प्रकार से लकड़ी के अन्दर अग्नि हमेशा रहेगी। लकड़ी में आग हमेशा मौजूद रहेगी परन्तु यदि लकड़ी को पकड़ो, उसे देखो तो उसके अन्दर तुमको अग्नि दीखती नहीं है जबकि उसमें मौजूद है क्योंकि यदि लकड़ी को हम घिसते हैं, मन्थन करते हैं तो उस लकड़ी में से अग्नि पैदा हो जाती है। अग्नि कहीं से आती नहीं है, उसमें से स्वयं प्रकट हो जाती है। यहाँ तक कि जिस हरे तने में तुमको अग्नि का स्पर्श भी प्रतीत नहीं होता, वहाँ भी अग्नि हो सकती है। आचार्य शंकर की माता ने उनसे यह निवेदन किया था कि 'अन्तिम समय में मेरा

संस्कार तुम, मेरे इकलौते लड़के हो, खुद ही करना।' आचार्य शंकर ने स्वीकार कर लिया था। जब वे माता का संस्कार करने के लिए गये तब वहाँ किसी ने उनको अग्नि नहीं दी। आचार्य शंकर के पिता की काफी बड़ी सम्पत्ति थी। प्राचीन काल में अपने यहाँ हिन्दू कोड बिल बनने के पहले तक अपनी स्मृतियों के अनुसार यह नियम था कि जो दाह करता है वही प्रधान रूप से सम्पत्ति का अधिकारी होता है। कई बार ऐसे प्रसंग आते थे कि कोई आदमी बिना पुत्र के मर गया, उसका शव चौक में रखा हुआ है, उसका दाह संस्कार कौन करे। जब तक आपस में समझौता नहीं हो जाता कि इसकी सम्पत्ति उसको जायेगी तब तक दाह कर्म नहीं होता था और दूसरे लोग भी नहीं करने देते थे। अन्त में जब निर्णय हो जाता था कि सम्पत्ति का मालिक अमुक व्यक्ति होगा तभी उससे दाह कर्म करवाया जाता था। ऐसी घटनाएँ तो अभी चालीस-पचास वर्ष पहले होती थीं। आचार्य शंकर के काल को तो बारह सौ वर्ष से भी ज्यादा हो गये हैं। कुछ लोगों को तो यह सन्देह था कि यदि इसने दाह कर्म किया तो यह सारी सम्पत्ति ले जायेगा! आचार्य तो परम त्यागी थे परम वैराग्यवान् थे। वे तो केवल माता की इच्छा पूरी करने के लिए आये थे, सम्पत्ति के लिए नहीं आये थे। उन लोगों ने आचार्यजी को बहुत बड़ा कारण बतला दिया कि 'तुम संन्यासी हो इसलिए इस कर्म के अधिकारी नहीं हो सकते हो, हम तुम्हें आग नहीं देंगे।' आचार्य शंकर ने उन्हें बहुत समझाया लेकिन वे लोग नहीं माने। अन्त में और कोई उपाय न देख कर वहीं घर के बगीचे में उन्होंने एक केले के पेड़ का गीला तना लेकर अपनी भुजाओं के द्वारा मंथन कर उसमें से ही अग्नि प्रकट करके अपनी माता का दाह संस्कार किया। केले का खम्भा जिसमें हम कल्पना भी नहीं करते कि आग होगी, वहाँ पर भी अग्नि मौजूद है। इसलिए अतिधन्य वेद कहता है - 'अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टः' अग्नि संसार की हर चीज के अन्दर प्रविष्ट है परन्तु हमको दीखती नहीं है और हमें छूने पर गरम भी महसूस नहीं होता। केले के तने को चाहे जितना छुओ वहाँ तुम्हें अग्नि प्रतीत नहीं होगी।

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

दाहक नहीं, प्रकाशक नहीं परन्तु मौजूद है।

इसी तरह से भगवान् शंकर हमेशा सर्वत्र मौजूद रहते हैं - 'एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा'। सभी चीजों के अन्दर उसके अन्दर की वास्तविकता के रूप में वे हमेशा मौजूद रहते हैं। परन्तु लोगों को क्या प्रतीति होती है? संसार की सब चीजें तो दीखती हैं, प्रत्यक्षसिद्ध हैं, भगवान् कहाँ हैं, भगवान् को कैसे मानें कि वे मौजूद हैं? कैसे मानें कि सर्वत्र भगवान् हैं? तुम कहते हो कि घड़ा है, कपड़ा है। अब कपड़े या घड़े के बारे में हम पूछें कि घड़ा कैसे बना, घड़ा किस रंग का है? कपड़ा किस रंग का है? कपड़ा कैसे बना, किस मिल का है तो तुम बड़े विस्तार से बतलाते चले जाओगे कि कपड़ा कैसा है। अब उसके बाद हम पूछते हैं कि तुमने दो शब्द बोले- एक 'घड़ा' और दूसरा 'है', एक कपड़ा और दूसरा 'है'। 'घड़ा' और 'कपड़ा' तो तुमने हमें समझाया, इस 'है' को भी तो समझाओ, 'है' मायने क्या? सिवाय यह कहने के कि 'है' मायने 'है'- और क्या जवाब दोगे? घड़े का मायने पूछते हैं तो बतलाते हो मिट्टी से बना हुआ मोटे पेट पतले मुँह का वर्तन है। ठीक इसी प्रकार हमको 'है' भी तो समझाओ। 'है' को नहीं समझा पाते। हर चीज के साथ 'है' का तुमको अनुभव होता है परन्तु तुम्हारा सारा ध्यान घड़ा ले लेता है इसलिए 'है' के बारे में तुम कुछ नहीं जानते। वह 'है' ही भगवान् शंकर का रूप है! 'है' के रूप में वे तुम्हें हमेशा प्रतीत होते हुए भी लगता है कि प्रतीत नहीं हो रहे हैं। इसी प्रकार से तुम कहते हो कि मुझे घड़े का ज्ञान है, मुझे कपड़े का ज्ञान है, मुझे मकान का ज्ञान है, मुझे देवदत्त का ज्ञान है, मुझे यज्ञदत्त का ज्ञान है। तुमसे देवदत्त, यज्ञदत्त, घड़ा, कपड़े के बारे में पूछें तो तुम उसकी तीन पीढ़ी बतला दोगे कि देवदत्त का बाप कौन, देवदत्त किस स्कूल में पढ़ा था, देवदत्त आजकल कहाँ क्या काम कर रहा है, किसके साथ उसने शादी की है, उसके बारे में सब बता दोगे। जब पूछेंगे कि तुमको घड़े का ज्ञान हुआ, कपड़े का ज्ञान हुआ, देवदत्त का ज्ञान हुआ, यज्ञदत्त का ज्ञान हुआ, यह 'ज्ञान' क्या चीज है? सिवाय इसके कि 'ज्ञान ही ज्ञान होता

श्री गणेश चतुर्थी

५

है', और कुछ बता नहीं सकोगे, वस यही कहोगे कि ज्ञान के बारे में कुछ पता नहीं। यही 'ज्ञान' परमात्मा का स्वरूप है। यह सब चीजों के साथ तुम्हारे सामने प्रकट होने पर भी तुम यज्ञदत्त, देवदत्त, भानुदत्त को जानते हो परन्तु यह ज्ञान क्या है इसको नहीं जानते। ज्ञानरूप से भगवान् शंकर नित्य तुम्हारे सामने प्रकट होने पर भी तुमको लगता है कि दुनिया दीखती है भगवान् दीखता नहीं! सत्, चिद् ये परमात्मा का रूप है।

वह सर्वत्र विद्यमान है कभी भी उत्पन्न होता नहीं। जो पहले नहीं था और अब है- उसको कहा जाता है- उत्पन्न हुआ। परन्तु शिव के साथ ऐसा कभी नहीं होता इसलिए 'महस्तद् अपितामहम्' भगवान् गणेश के दादा नहीं हैं। भगवान् शंकर पिता हुए, उनका आगे कोई पिता है नहीं तो पितामह कहाँ से आयें? इसे कथारूप में भी कई जगह कहा जाता है कि जब भगवान् शंकर और पार्वती का विवाह होने लगा तो नियम है कि विवाह के समय गोत्राचार होता है, तुम्हारी पीढ़ियाँ बोली जाती हैं। जब भगवान् शंकर से पूछा तो उन्होंने कहा 'मेरे तो कोई पिता नहीं हैं।' नारदजी ने विवाह से पहले ही यह बात कही थी, हिमालय की पत्नी मेनका को जाकर समझाया था 'अरे! हिमालय को समझाओ। लड़की देने जा रहा है पर जिसे देने जा रहा है उसके कुल का भी तो कुछ पता लगाए, जाति का भी पता लगाए।' मेनका ने कहा 'बात तो ठीक है।' हिमालय से पूछा, हिमालय ने कहा कि न उनका गोत्र है न उनका कुल है और न उनका वर्ण है। मेनका ने कहा 'अरे! ऐसा जिसके कुल का पता नहीं, जाति का पता नहीं उसको तुम लड़की दे रहे हो, यह कैसे कर रहे हो?' नारदजी ने तो अपना काम बना लिया, पति-पत्नी में झगड़ा हो गया! जैसे-तैसे मेनका को तो समझा-बुझा लिया लेकिन विवाहकर्म में तो बाप-दादा-परदादा का नाम लेना ही पड़ता है परन्तु भगवान् शंकर के गोत्राचार के समय नहीं बताया जा सका कि उनके पितामह कौन हैं।

भगवान् गणपति तो महत् तेजःस्वरूप हैं। तेज ही उनका

श्री गणेश चतुर्थी

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

वास्तविक स्वरूप है। विचार करो, भगवान् शंकर और पार्वती से गणेश उत्पन्न होते हैं। भगवान् जब प्रकट होते हैं तब अन्तःकरण की वृत्ति में ही प्रकट होते हैं। अन्तःकरण अर्थात् तुम्हारा मन। मन की वृत्ति में ही प्रकट होते हैं। यद्यपि मन की वृत्ति में तो घड़ा, कपड़ा इत्यादि सभी प्रकट होते हैं जो कुछ भी तुमको प्रकट होता है वह तुम्हारे मन के द्वारा ही होगा, मन के द्वारा ही दीखेगा, जब सब कुछ उसमें प्रकट होता है तो भगवान् भी उसी में प्रकट होंगे, तथापि सब कुछ प्रकट होता है और भगवान् प्रकट होते हैं— इसमें फर्क है। सब कुछ प्रकट होता है तब उसमें उसका 'हैपना' उसका 'ज्ञान' भी प्रकट होता है। 'घड़ा है' यह तुम्हारे मन को पता लगता है। 'घड़े को मैंने जाना' यह तुमको पता लगता है। परन्तु केवल 'है' और 'ज्ञान' यह परमात्मा का स्वरूप हैं, परमात्मा का ज्ञान नहीं, परमात्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं। ज्ञानस्वरूप और सत्स्वरूप होने के कारण उनके ज्ञान के समय सिवाय उनके तेज के और कुछ भी तुम्हारे अन्तःकरण की वृत्ति में नहीं होता। इसी को शास्त्रकार भगवदाकार वृत्ति, शिवाकार वृत्ति, ब्रह्माकार वृत्ति इत्यादि शब्दों से कहते हैं।

विचार करो, महाशैल क्या है? पंचभूतों से उत्पन्न हुई वृत्ति। उस वृत्ति के अन्दर तेज प्रकट होता है। इसलिए वृत्ति माँ और पंचभूत नाना हुए। किन्तु प्रकट हुए वे स्वयं तेजःस्वरूप हैं इसलिए उस तेजःस्वरूप भगवान् गणपति को दादा से रहित बतलाया।

भगवान् गणपति की उत्पत्ति पुराणों के अन्दर बतलाई है—भगवती पार्वती ने विचार किया कि 'एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो बिल्कुल मेरी बात माने।' ब्याह कर ससुराल में आई थी। जितने भी ससुराल के नौकर-चाकर थे वे सब भगवान् शंकर की तो बात झट मानें परन्तु पार्वतीजी की बात भगवान् शंकर से पूछकर मानें। पार्वतीजी ने सोचा 'यहाँ जितने हैं वे सब शंकरजी के ही लोग हैं, एक ऐसा होना चाहिए जो मेरी बात माने।' यदि भगवान् शंकर से उत्पन्न करें तो वह शंकरजी का ही होगा। इसलिए पार्वतीजी ने निश्चय किया कि 'मैं खुद ही पैदा करूँगी।' एक बार वे पीठी से

स्नान करने के लिए बैठी। पीठी बेसन, दही, घी आदि को मिलाकर बनती है, उससे अच्छी तरह अपने शरीर को साफ करके जो पीठी बची उसी से एक लड़का बना दिया। लड़का बनाकर उसके अन्दर उन्होंने प्राण फूँक दिया। वह लड़का उनको इतना सुन्दर लगा कि उन्होंने देवताओं को निमंत्रण देकर कहा कि 'देखो मेरा लड़का कितना सुन्दर है!' सभी देवताओं ने आकर बड़ी प्रशंसा की। अन्य देवताओं के साथ शनि देवता भी आये थे परन्तु वे उस लड़के की तरफ नहीं देख रहे थे। पार्वतीजी ने कहा 'अरे! इतना अच्छा लड़का है, तुम देखते क्यों नहीं हो?' शनि ने कहा 'महारानी, मैं नहीं देखूँ तो अच्छा है।' स्त्री हठधर्मी होती है। पार्वतीजी ने कहा कि 'नहीं-नहीं, तुम देखो।' अब पार्वतीजी की आज्ञा मानकर उन्होंने उसकी तरफ देखा तो देखते ही उसका सिर कटकर गिर गया! पार्वतीजी कहने लगी 'तुमने यह क्या किया?' शनि देवता बोले कि 'मैंने पहले ही कहा था कि मुझे देखने के लिए मत कहिये। शनि और यम की दृष्टि जिसपर पड़ जाय उसका फिर क्या बचाव हो सकता है!' भगवती पार्वती ने भगवान् शंकर से कहा कि 'महाराज! मेरे बेटे का सिर कट गया, अब क्या उपाय किया जाय?' भगवान् शंकर हँसकर बोले कि 'अरे! तुमने शनि को बार-बार देखने के लिए क्यों कहा?' भगवती पार्वती बोली 'मुझे पता नहीं था कि शनि की जिस पर दृष्टि पड़ती है उसका नाश होता है।' जन्मपत्री के अन्दर भी शनि की दृष्टि वाला जो घर होता है वह दुःख का कारण बनता है। भगवती पार्वती ने भगवान् शंकर को बार-बार कहा कि 'इसे किसी तरह से जिन्दा कीजिए।' भगवान् शंकर तो सर्वथा मर्यादा के अनुसार चलते हैं। उन्होंने देखा कि यदि मैं वापस इसी के सिर को लगाकर इसे जिन्दा कर दूँगा तो लोगों को लगेगा कि शनि की दृष्टि का जो नुकसान है वह बच जाता है और शनि की महिमा कम हो जायेगी। शनि की महिमा ही ऐसी है कि जिसके ऊपर उसकी दृष्टि पड़े उसका जो नाश होता है वह निरुपाय होता है, उसका कोई उपाय नहीं होता। इसलिए भगवान् शंकर ने विचार किया कि शनि का महत्त्व कम नहीं

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

होना चाहिए। मैंने ही शनि का निर्माण किया है और मैं ही फिर इसका प्रतिबन्धक हो जाऊँ यह ठीक नहीं। हमारे यहाँ एक कहावत है - 'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयंछेतुमसाम्प्रतम्' जहर का पेड़ भी यदि तुमने भूल करके लगा दिया, वह बड़ा हो गया, अब तुम्हें लगता है कि अरे! बाल-बच्चों का घर है, इसके फल जहरीले होते हैं इसलिए यह पेड़ घर में लगकर अच्छा नहीं हुआ। परन्तु खुद उसको काटो, यह ठीक नहीं है। कोई दूसरा काटे तो उसको रोको नहीं, यह तो ठीक है। अतः मैंने ही शनि को ऐसा बनाया और मैं ही फिर उसका महत्त्व कम कर दूँ यह ठीक नहीं। इसलिए उन्होंने अपने गण से कहा कि 'किसी का भी सिर ले आओ।' गण चला गया, उसे दरवाजे के बाहर ही एक हाथी दिखाई दिया, वह झट से उसका सिर काटकर ले आया, बोला 'लीजिए महाराज! सिर काटकर ठीक-ठाक ले आया।' भगवान् शंकर ने सोचा कि 'सिर को तो कटना था सो बेचारे का कट ही गया, अब इसको बेकार नहीं करना चाहिए, मेरी आज्ञा मानकर लाया है।' उन्होंने उसी सिर को गणेशजी के घड़ के ऊपर रख कर प्राण फूँक दिया इसलिए उनका सिर हाथी का हो गया।

जैसे केवल भगवती पार्वती ने गणेश को उत्पन्न किया, इसी प्रकार पंचमहाभूतों का जो कार्य अन्तःकरण वही वृत्ति को पैदा करता है परन्तु खाली ब्रह्माकार वृत्ति कुछ नहीं कर सकती जब तक उसके साथ तेज का सम्बन्ध न हो जाय, भगवान् शंकर का सम्बन्ध न हो जाय, जब तक उस वृत्ति में चेतन प्रतिफलित न हो जाय। चेतन जब प्रतिबिम्बित हो जाये तब उसका जो काम है यानि सारे विष्णों की जड़ अज्ञान का नाश कर देना, वह करेगा। जैसे वहाँ भगवान् गणपति के हाथी का सिर लगाया वह हिरसा भगवान् शंकर का है वाकी पार्वती का है। ऐसे वृत्ति और आभास में समझना चाहिए।

सिर की विशेषता तो आप जानते ही हैं। ज्ञान के पाँच साधन हैं। पाँच कारणों से हमें ज्ञान होता है। आँख से रूप का ज्ञान होता है, कान से शब्द का ज्ञान होता है। नाक से गन्ध का ज्ञान होता है। जीभ से खट्टा-मीठा, नमकीन इत्यादि का ज्ञान होता है और त्वक् के

द्वारा ठंडा-गर्म इत्यादि का ज्ञान होता है। ध्यान से शरीर को देखो तो आँख कहाँ है? सिर में। कान कहाँ हैं? सिर में। नाक कहाँ है? सिर में। जीभ कहाँ है? सिर में। जो पाँचवाँ स्पर्शेन्द्रिय त्वक् है, जिससे गरम-ठण्डे का पता लगता है, वह यद्यपि सारे शरीर में है तथापि सबसे ज्यादा स्पर्श का अनुभव कहाँ होता है? गाल के ऊपर होता है। अन्य स्थानों पर कुछ कड़ापन रहेगा परन्तु जो गाल है वह हमेशा विल्कुल नरम रहेगा। वहाँ स्पर्श का बड़ी जल्दी पता लगता है। इसी प्रकार जो नाक का अग्र भाग है वहाँ पर भी स्पर्श का बड़ी जल्दी बड़ा तेज़ अनुभव होता है। कान के जो लोल हैं इनमें भी स्पर्श का अनुभव बड़ी तेज़ी से होता है। अतः चार इन्द्रियाँ ज्ञान की तो हैं ही मुख में और पाँचवीं सर्वत्र होने पर भी मुख के हिस्से में विशेषरूप से प्रकट है। इसलिए कह सकते हैं कि जो मुख है, सिर है यही सारे ज्ञान का केन्द्र है। वृत्ति तो बनती है पंचमहाभूतों के कार्य अन्तःकरण से परन्तु उसके अन्दर ज्ञान का हिस्सा भगवान् शंकर का है। भगवान् गणपति में ऊपर का हिस्सा ज्ञान को बतलाता है और बाकी पार्वती का बनाया हुआ थड़ पंचमहाभूतों का ही कार्य है। ब्रह्माकार वृत्ति शुद्ध ब्रह्म भी नहीं है और केवल अज्ञान का कार्य भी नहीं है। इसमें दोनों मिले हुए हैं। महर्षि वशिष्ठ बतलाते हैं कि जैसे सूर्य घास को बर्बाद नहीं करता है उल्टा घास को बढ़ाता है। जहाँ धूप न पड़े वहाँ घास ज्यादा बढ़ती नहीं, सूख जाती है। सूर्य उस घास को बढ़ाता है। दूसरी तरफ जो सूर्यकान्त मणि है, आजकल की भाषा में समझ लो कान्चेक्स लेन्स है, वह घास को जला नहीं सकता परन्तु सूर्यकान्त मणि में से यदि सूर्य जाता है तो घास को जलाता है। सूर्य-किरण को जिस चीज़ पर केन्द्रित करो वह थोड़ी देर में जल जायेगी। जलाने वाला है तो सूर्य परन्तु सूर्यकान्त मणि से प्रविष्ट होकर ही जलाता है। इसी प्रकार से परब्रह्म परमात्मा भगवान् महेश्वर तो संसार का पोषण कर रहे हैं। जैसे वे सृष्टि को बनाने वाले वैसे ही सृष्टि का पोषण करते हैं। उनके बिना सृष्टि का एक कण भी पुष्ट नहीं हो सकता। इसीलिए भगवान् शंकर का स्मरण करते हैं तब

कहते हैं 'सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्'; वे कैसे हैं? सारा संसार अत्यन्त सुगन्धि से भरा हुआ है क्योंकि जितने सुगन्धि हैं वे सब ईश्वर के स्वरूप हैं। गीता में भगवान् ने कहा है- 'पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च' पृथ्वी में जितनी सुगन्ध है वह सारी परमेश्वर का रूप है। आगे कोई प्रश्न करे कि दुर्गन्ध किससे है? आचार्य शंकर ने वहाँ जवाब दिया है कि दुर्गन्ध अपने पाप से है। जब हमारा पाप कर्म होता है तब हमें दुर्गन्ध आती है। सुगन्ध तो पृथ्वी का स्वरूप है परमात्मा का स्वरूप है। जैसे सूर्यकान्त मणि के साथ मिला हुआ सूर्य ही जलाता है उसी प्रकार से पंचमहाभूत से बनी हुई ब्रह्माकार वृत्ति के अन्दर चढ़ा हुआ तेज अज्ञान को जलाता है। अज्ञान अन्धकार को केवल भगवान् नहीं जलाता। इसीलिए कहा कि गणेशजी महः हैं तेज हैं क्योंकि वे तुम्हारे अज्ञान अन्धकार को जला देते हैं।

जब तक नहीं जलाते हैं तब तक 'जगतां कारणम् वन्दे' - सारे जगत् का कारण भी वे ही हैं। बड़ी विलक्षण बात है! सारे संसार को तुम कब देखते हो? जब तुम्हारे अन्तःकरण की वृत्ति होवे और उसके साथ आत्मा का प्रकाश होवे। बिना आत्मा के प्रकाश के केवल वृत्ति कुछ नहीं कर सकती। परमात्मा के प्रकाश के साथ वाली बनकर अन्तःकरण वृत्ति सारे संसार को उत्पन्न करती है, प्रकट करती है। उस वृत्ति के कारण ही तुम सारे कार्य करते हो, क्रियाएँ करते हो। यदि उस परमात्मा की वृत्ति बनती है तब वह महः तुम्हारे इस सारे संसार के मूल कारण अज्ञान को नष्ट कर देता है। जब तक उसको विषय नहीं करते हो तब तक सारे संसार का फैलाव भी उसी से होता है। शिव और पार्वती का संयोग ही सारे शरीर, संसार को भी पुष्ट करता है और ठीक प्रकार से उसके स्वरूप को ग्रहण करने से वह ही अज्ञान को नष्ट करता है।

कंठ से ऊपर भगवान् गणपति का रूप हाथी का है। 'वारण' का मतलब हाथी तो होता ही है, जो किसी चीज का वारण कर देवे, हटा देवे, वह भी वारण है। कंठ के ऊपर जो उनका हाथी का स्वरूप है चूँकि वह परमेश्वर के साथ वाला है इसलिए जब केवल उसे ही

पूज्य महाराजश्री के प्रवचन, २००३

तुम्हारी वृत्ति विषय करती है तब तो वह इस संसार को हटा देता है, अन्यथा वह सारे जगत् का कारण है ही। शिव और शक्ति के संयोग से ही सारा जगत् भी है तथा शिव एवं शक्ति के संयोग से ही ज्ञान भी है। भगवान् गणपति के दोनों स्वरूप बतला दिये- महः स्वरूप जिसके द्वारा वे तुमको परमात्मा का ज्ञान दे कर मुक्त कर देते हैं, और उनका दूसरा स्वरूप जो सारे जगत् को पुष्ट करने वाला है। ऐसे भगवान् गणपति का आज जन्म दिन है।

उनको गणपति कहने का मूल कारण क्या है? कई चीजें जब मिलती हैं तब उसे गण कहते हैं, जिसे अंग्रेजी में 'कलैक्टिव' कहते हैं हिन्दी में समूह कहते हैं। पंचभूत एक गण हुआ। इनसे उत्पन्न होने वाली पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, अन्तःकरण-चतुष्टय, ये सब गणों में ही मिलते हैं। इन सारे गणों के वे ही अधिपति हैं क्योंकि मायाविशिष्ट चेतन ही सारे संसार की हर चीज़ का ईश है। वह स्वयं अकेला है, अद्वैत है, परन्तु वह जब इन गणों को अधिष्ठित करता है तब गणेश बनता है, तभी वह सारी सृष्टि के सारे कार्यों को चलाता है। इसीलिए उनको गणेश कहते हैं सारे गणों के ये ही ईश हैं। हम लोगों की परम्परा में कोई भी कार्य प्रारम्भ करो तो पहले भगवान् गणपति की वन्दना की जाती है, उनकी पूजा की जाती है, अर्चना की जाती है। वे गणपति आप लोगों का कल्याण करते हुए इस संसार के अन्दर भी आप लोगों को सब प्रकार की पुष्टि देवें और अन्त में अपना जो वास्तविक वारणस्वरूप है उसके द्वारा आपके जगत् का वारण कर देवें, यही आप लोगों को आशीर्वाद है।



बुक पोस्ट

सेवा में _____

_____:

प्रेषक :

विष्णुदास मेहता

श्री राजराजेश्वर आश्रम

महेशनगर, डा० ओयल

जिला ऊना (हि०प्र०.)-177206